वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक ३ मार्च २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक ३

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

फाल्गुन, सम्वत् २०८१

मार्च, २०२५

अनुक्रमणिका

* श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे लिए विशेष कल्याणकारी हैं : विवेकानन्द १०२
* शिवभाव से जीवसेवा (स्वामी अलोकानन्द) १०५
* दैवी सम्पदरूप श्रीरामकृष्ण (स्वामी दयापूर्णानन्द) ११२
* (बच्चों का आंगन) वैदिक नारी अपाला (श्रीमती मिताली सिंह) ११७
* स्वामी विवेकानन्द के विचारों के आलोक में नारी सशक्तिकरण (नम्रता वर्मा) ११८
* (युवा प्रांगण) अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस – प्रेरणा और सशक्तिकरण का उत्सव (स्वामी गुणदानन्द) १२१
* स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर (स्वामी तन्निष्ठानन्द) १२५
* चोवा, चन्दन, अरगजा वीथिन में रच्यौं है गुलाल (लक्ष्मीनारायण तिवारी) १३०
* व्याकुल योग (नवीन चन्द्र मिश्र) १३३
* (कविता) आजु काशी भाग मचावे जोगिया (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') १०९
* (कविता) रामकृष्ण प्रभु का गुण गाता (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) १११
* स्वामी विवेकानन्द-वन्दना (डॉ. रामकुमार गौड़) १२३
* (कविता) प्रभु मैथिलीश्वर त्वं स्वयम् (स्वामी मैथिलीशरण), रामकृष्ण कृपालु भगवन् (डॉ. श्रीधर प्रसाद द्विवेदी) १२४
* ब्रज मंडल धूम मचाओ रसिया (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') १३१
* पुस्तक समीक्षा १४०,१४१

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १०१
पुरखों की थाती १०१
सम्पादकीय १०३
रामगीता ११०
प्रश्नोपनिषद् १२९
श्रीरामकृष्ण-गीता १३२
गीतातत्त्व-चिन्तन १३५
साधुओं के पावन प्रसंग १३८
समाचार और सूचनाएँ १४२

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,**
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान – रायपुर
२. प्रकाशन की नियतकालिकता – मासिक
३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक – स्वामी अव्ययात्मानन्द
५. सम्पादक – स्वामी प्रपत्त्यानन्द
राष्ट्रीयता – भारतीय
पता – रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी – रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण स्वामी गौतमानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी सत्येशानन्द और स्वामी अच्युतेशानन्द।

मैं स्वामी अव्ययात्मानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी अव्ययात्मानन्द

मार्च माह के जयन्ती और त्यौहार

०१ श्रीरामकृष्ण देव
१४ चैतन्य महाप्रभु, होली
१८ स्वामी योगानन्द
१०,२५ एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामराज प्रसाद एवं श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.) द्वारा	९,५०१/-

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित चित्र रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के ध्यानकक्ष का है।

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

रामकृष्ण विवेकानन्द वेदान्त समिति

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भाव प्रचार परिषद का सदस्य आश्रम
1, हनुमान नगर, रसुलिया, नर्मदापुरम (होशंगाबाद) - 461001(म.प्र.)
वेबसाइट : https://rkvivs.org. Email : rkvivs@gmail.com

प्रिय भक्तो/शुभचिन्तको

नमस्कार,

वर्ष 2013 में स्थापना के बाद से, रामकृष्ण विवेकानन्द वेदान्त समिति, नर्मदापुरम (म.प्र.) ने समाज के वंचित वर्ग के लिए निम्नलिखित शैक्षणिक एवं चिकित्सा सेवाएँ प्रदान की हैं :

1. सार्वजनिक शिक्षा और संस्कृति के लिए एक सामान्य पुस्तकालय का संचालन ।
2. 1000 बच्चों के लिए कुपोषण उन्मूलन कार्यक्रम का नेतृत्व ।
3. 50 गरीब और मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करना ।
4. 1500 वंचित लोगों/छात्रों को लाभ पहुँचाने के लिए शीतकालीन राहत कार्यों का आयोजन।
5. युवाओं के लिए मूल्य शिक्षा कार्यक्रम का संचालन ।
6. चिकित्सा शिविरों का आयोजन ।

वर्तमान में, ये सभी सेवा गतिविधियाँ किराए के भवन से संचालित की जा रही हैं। अतः अब एक स्थायी ढाँचे की अत्यन्त आवश्यकता है, ताकि इन गतिविधियों को निरन्तर और विस्तारित रूप में किया जा सके । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित बुनियादी ढाँचे के विकास का प्रस्ताव किया गया है ।

(I) भूमि की लागत रु. 2.00 करोड़

(II) भवनों की लागत :

(i) पुस्तकालय भवन रु. 50 लाख
(ii) औषधालय भवन रु. 100 लाख
(iii) कार्यालय भवन - रु. 40 लाख
(iv) वृद्ध परित्यक्त लोगों के लिए आश्रय (निःशुल्क) रु.125 लाख
(v) साधु और स्वयंसेवकों के लिये आवास रु. 60 लाख
(vi) छात्रों के लिए छात्रावास (निःशुल्क) - रु. 55 लाख
(vii) आधारभूत संरचना के रखरखाव के लिए निधि रु. 70 लाख

कुल अनुमानित लागत रु. 7.00 करोड़

उदार व्यक्तियों और परोपकारी संगठनों से विनम्र निवेदन है कि समाज के सर्वांगीण विकास के इस पुनीत कार्य में सहयोग करें । भगवान श्री रामकृष्ण, माँ सारदा देवी और स्वामीजी आप सभी को आशीर्वाद प्रदान करें ।

सप्रेम नमस्कार और शुभकामनाओं के साथ ।

हमारा बैंक खाता विवरण
पंजाब नेशनल बैंक
इतवारा बाजार, नर्मदापुरम (होशंगाबाद)
A/C No. 200900100214513
IFSC Code PUNB0200900

आपकी सेवा में
(स्वामी वीरेशानन्द)
अध्यक्ष
8949068162

महत्त्वपूर्ण सूचना : समिति को दिए गए योगदान आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80 (G) के तहत छूट प्राप्त है। हम नकद राशि स्वीकार नहीं करते हैं। कृपया आधार/पैन विवरण भेजकर अध्यक्ष वाट्सएप के माध्यम से दान की जानकारी दें।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

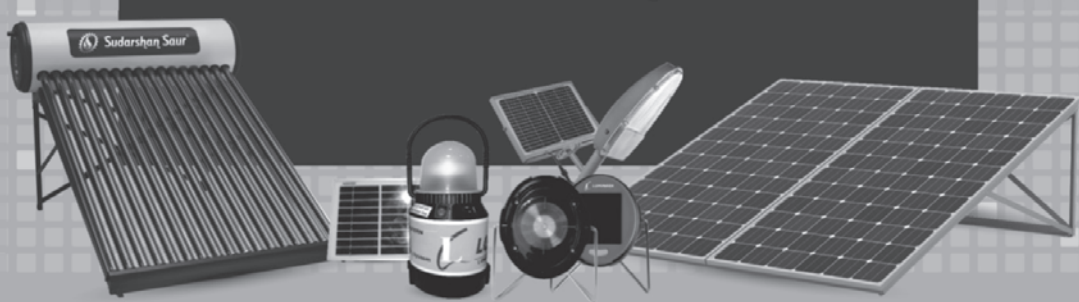

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ मार्च २०२५ अंक ३

श्रीरामकृष्ण–सुप्रभातगीतम्

लीलामनुष्यो भगवन् क्षुदिरामसूनो
श्रीसारदारमण चन्द्रमणीतनूज।
सर्वावतारतिलकायित-पुण्यकीर्त्ते
श्रीरामकृष्ण भवतुतव सुप्रभातम्।।
कालीपदाम्बुजसमर्चनलालसस्य
तद्विप्रयोगकठिनव्यसनातुरस्य।
निःशेषरोमविवरश्रृतरक्तबिन्दो-
र्मुर्च्छाभिभूतमनस्तव सुप्रभातम्।।

– हे भगवन् ! लीलाविग्रहधारी हे क्षुदिरामनन्दन ! हे सारदाप्रिय ! हे चन्द्रमणितनय ! हे सर्वावतारवरिष्ठ ! हे पुण्यकीर्तिमान श्रीरामकृष्ण ! दिशा-दिशा में तुम्हारा सुप्रभात घोषित हो। हे देवी काली के चरण कमलों की पूजा करते-करते व्याकुल एवं उनका दर्शन न पाने के विरह के ताप में जिनके शरीर के रोमकूप से रक्त-बिन्दु गिरे हैं तथा जो समाधिमग्न हुये, उन्हीं श्रीरामकृष्ण का सुप्रभात दिशाओं में घोषित हो।

पुरखों की थाती

सर्वौषधीनाममृतं प्रधानं
सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम्।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ।।८६०।।

– सभी औषधियों में अमृत (आँवला, हरीतकी या गिलोय) प्रधान है, सभी सुखों में भोजन प्रधान है, सभी इन्द्रियों में आँखें प्रधान हैं और सभी अंगों में सिर प्रधान है।

सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्धते।
क्षमया स्थाप्यते धर्मो क्रोध-लोभाद्विनश्यति।।८६१।।

– धर्म सत्य से उत्पन्न होता है, दया तथा दान से बढ़ता है, क्षमा से स्थिर होता है और क्रोध तथा लोभ से उसका विनाश हो जाता है।

सत्यं क्षमाऽऽर्जवं ध्यानमानृशंस्यम्-अहिंसनम्।
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश।।८६२।।
(स्कन्द.)

– सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, क्रूरता का अभाव, अहिंसा, मन तथा इन्द्रियों का संयम, चिर-प्रसन्नता, मधुर आचरण और कोमलता हर व्यक्ति में ये दस गुण अवश्य हों।

श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे लिये विशेष कल्याणकारी हैं : विवेकानन्द

यदि मनसा, वाचा, कर्मणा मैंने कोई सत्कार्य किया हो, यदि मेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकली हो, जिससे संसार के किसी भी मनुष्य का कुछ उपकार हुआ हो, तो उसमें मेरा कुछ भी गौरव नहीं, वह श्रीरामकृष्ण का है। परन्तु यदि मेरी जिह्वा ने कभी अभिशाप की वर्षा की हो, यदि मुझसे कभी किसी के प्रति घृणा का भाव निकला हो, तो वे मेरे हैं, उनके नहीं! जो कुछ दुर्बल है, वह सब मेरा है, पर जो कुछ भी जीवनप्रद है, बलप्रद है, पवित्र है, वह सब उन्हीं की शक्ति का खेल है, उन्हीं की वाणी है और वे स्वयं हैं। मित्रो, यह सत्य है कि संसार अभी तक उन महापुरुष से परिचित नहीं हुआ। हम लोग संसार के इतिहास में शत्-शत् महापुरुषों की जीवनी पढ़ते हैं। इसमें उनके शिष्यों के लेखन एवं कार्य-संचालन का हाथ रहा है। हजारों वर्षों तक लगातार उन लोगों ने उन प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरितों को काट-छाँटकर सँवारा है। परन्तु इतने पर भी जो जीवन मैंने अपनी आँखों देखा है, जिसकी छाया में मैं रह चुका हूँ, जिनके चरणों में बैठकर मैंने सब सीखा है, उन श्रीरामकृष्ण परमहंस का जीवन जैसा उज्ज्वल और महिमान्वित है, वैसा मेरे विचार में और किसी महापुरुष का नहीं। (५/२०६)

सम्प्रदाय में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पड़ी थी और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावों से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरों की अपेक्षा विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नहीं जानता था। किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े-बड़े अत्यन्त प्रतिभावान स्नातकों ने उसको एक महान बौद्धिक प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया। वे अद्भुत महापुरुष थे – श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हें उनके विषय में कुछ भी बताने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय सब महापुरुषों के पूर्णप्रकाशस्वरूप, युगाचार्य श्रीरामकृष्ण का उल्लेख भर करके आज समाप्त

करना होगा। उनके उपदेश आजकल हमारे लिये विशेष कल्याणकारी हैं। उनके भीतर जो ईश्वरीय शक्ति थी, उस पर विशेष ध्यान दो। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के लड़के थे। उनका जन्म बंगाल के सुदूर, अज्ञात, अपरिचित किसी एक गाँव में हुआ था। आज यूरोप, अमेरिका के सहस्रों व्यक्ति वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं, भविष्य में और भी सहस्रों मनुष्य उनकी पूजा करेंगे। (५/१६१-१६२)

वे सदा यही कहा करते थे कि यदि मेरे मुँह से कोई अच्छी बात निकलती है, तो वे जगन्माता के ही शब्द होते हैं, मैं स्वयं कुछ नहीं कहता। अपने प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में उनका यही विचार रहा करता था और महासमाधि के समय तक उनका यही विचार स्थिर रहा। मेरे गुरुदेव किसी को ढूँढ़ने नहीं गये। उनका सिद्धान्त यह था कि मनुष्य को प्रथम चरित्रवान होना चाहिए तथा आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये और उसके बाद फल स्वयं ही मिल जाता है। वे बहुधा, एक दृष्टान्त दिया करते थे कि 'जब कमल खिलता है, तो मधुमक्खियाँ स्वयं ही उसके पास मधु लेने के लिए आ जाती हैं' – इसी प्रकार जब तुम्हारा चरित्ररूपी पंकज पूर्ण रूप से खिल जायेगा और जब तुम आत्मज्ञान प्राप्त कर लोगे, तब देखोगे कि सारे फल तुम्हें अपने आप ही प्राप्त हो जायेंगे।'' (७/२५७)

सम्पादकीय

श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में अज्ञानी, ज्ञानी और विज्ञानी

वस्तु के सम्बन्ध में ज्ञान और विज्ञान का उल्लेख किया जाता है। ज्ञान और विज्ञान, अज्ञानी, ज्ञानी और विज्ञानी की भौतिक और आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रकार की परिभाषायें चिन्तकों के द्वारा दी गयी हैं। यहाँ तक कि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विज्ञानसहित ज्ञान का उपदेश दिया है। इसलिये उस अध्याय का नाम ज्ञान-विज्ञान योग है। श्रीभगवान कहते हैं –

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।[१]

– हे अर्जुन ! मैं इस विज्ञानसहित ज्ञान को तुझे सम्पूर्ण रूप से कहूँगा, जिसे जानकर संसार में पुनः कुछ जानने योग्य शेष नहीं रह जाता। उसके बाद भगवान अपनी प्रकृति – जड़ प्रकृति और चेतन प्रकृति आदि का वर्णन करते हैं। उसी क्रम में चार प्रकार के भक्तों – अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी का वर्णन करते हैं।

जब मैंने हिन्दी कोशकार के विचारों से अवगत होने की इच्छा से शब्दकोश में देखा, तो उसमें ज्ञान का अर्थ है – जानना, बोध, जानकारी, सच्ची जानकारी, सम्यक् बोध, शास्त्रानुशीलन आदि से आत्मतत्त्व का अवगम, आत्मसाक्षात्कार, बुद्धिवृत्ति, वेद, परब्रह्म। ज्ञानी का अर्थ है – ज्ञानवान, जिसने आत्मज्ञान या आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लिया है। दैवज्ञ, ऋषि। विज्ञान का अर्थ है – ज्ञान, समझ, प्रज्ञा, विवेक, निश्चयात्मिका बुद्धि, दक्षता, कार्यकुशलता, अनुभवजन्य ज्ञान, आकाश, कारबार, संगीत, चौदहों विद्याओं का ज्ञान, किसी विषय का क्रमबद्ध और व्यवस्थित ज्ञान, कर्म, आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष आदि का ज्ञान। संस्कृत-हिन्दी कोशकार वामन आपटे जी ने विज्ञान शब्द का एक अर्थ यह भी दिया है – प्रवीणता, सांसारिक या लौकिक ज्ञान, सांसारिक अनुभव से प्राप्त ज्ञान। विज्ञानी का अर्थ है – किसी विषय का उत्तम ज्ञाता, किसी विज्ञान में निष्णात वैज्ञानिक, आत्मा-परमात्मा के स्वरूप का तत्त्व जाननेवाला। प्रतियोगिता दर्पण में विज्ञान की परिभाषा को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि 'विज्ञान' शब्द का अँग्रेजी रूपान्तरण साइन्स है, जो लैटिन भाषा के शब्द 'साइटिया' से बना है, जिसका अर्थ 'जानना' है। किसी भी विषय के सन्दर्भ में प्रायोगिक विश्लेषणों के फलस्वरूप प्राप्त क्रमबद्ध, सुसंगठित तथा व्यवस्थित ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं।

यहाँ पर ज्ञान और विज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं को उद्धृत करने का मेरा उद्देश्य यह था कि पाठक ज्ञान-विज्ञान के सामान्य अर्थ और उसकी अवधारणा से परिचित हो जायँ, ताकि आपको श्रीरामकृष्ण द्वारा ज्ञान-विज्ञान, ज्ञानी-विज्ञानी के सम्बन्ध में प्रदत्त विचार और दृष्टान्त समझने में सुविधा हो सके। अन्वेषण करने पर मुझे पाश्चात्य और भारतीय चिन्तकों के विचार भी इस सम्बन्ध में मिले थे, लेकिन मेरा प्रतिपाद्य विषय श्रीरामकृष्ण देव के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान-विज्ञान और ज्ञानी-विज्ञानी की चर्चा करना है, इसलिये मैं उन सबको छोड़कर सीधे मूल विषय का प्रतिपादन करता हूँ।

अज्ञानी – श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – 'मैं और मेरा' ये दोनों अज्ञान हैं। यह भाव कि मेरा घर है, मेरे रुपये हैं, मेरी विद्या है, मेरा यह सब ऐश्वर्य है, अज्ञान से उत्पन्न होता है। हे ईश्वर ! तुम कर्ता हो और ये सब तुम्हारी चीजें हैं – घर, परिवार, लड़के-बच्चे, स्वजनवर्ग, बन्धु-बान्धव, ये सब तुम्हारी वस्तुएँ हैं।[२]

एक स्थान पर श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, विज्ञान यानी विशेष रूप से जानना। किसी ने दूध के बारे में केवल सुना है, किसी ने दूध देखा है, किसी ने दूध पीया है। जिसने केवल सुना ही है, वह अज्ञानी है, जिसने देखा है, वह ज्ञानी है, जिसने पीया है, उसे विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से ज्ञान हुआ है। ईश्वर के दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् उनके साथ परम आत्मीय की तरह वार्तालाप आदि होना, इसी का नाम विज्ञान है।[३]

३० जून, १८८४ को पण्डित शशधर आये हुये हैं, उनसे वार्तालाप के दौरान श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – ''ज्ञानी 'नेति नेति' विचार करता है। इस प्रकार विचार करते हुये जहाँ उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, वही ब्रह्म है। ज्ञानी नियम के अनुसार चलता है। परन्तु ईश्वर की बात बिना पूछे ज्ञानी उस सम्बन्ध में स्वयं कुछ नहीं कहते। पहले वे पूछेंगे, इस समय कैसे हो? घरवाले अब कैसे हैं? परन्तु विज्ञानी का स्वभाव कुछ दूसरा ही है। उसके स्वभाव में ढिलाई रहती है। कभी देखा, धोती कहीं खुली हुई है, कभी बगल में दबी हुई है, बच्चे जैसे।

ईश्वर हैं, यह जिसने जान लिया, वह ज्ञानी है, लकड़ी में अवश्य ही आग है, यह जिसने जाना है, वह ज्ञानी है,

परन्तु लकड़ी जलाकर भोजन पकाना, भरपेट खाना, यह जिसे आता है, वह विज्ञानी है। ''विज्ञानी के आठों पाश खुल जाते हैं। उनमें काम-क्रोधादि का आकार मात्र रह जाता है।''[४]

''विज्ञानी सदा ही ईश्वर का दर्शन किया करता है। इसीलिये तो उसका इतना कोमल स्वभाव होता है। वह आँखें खोलकर भी ईश्वर के दर्शन करता है। कभी वह नित्य से लीला में आ जाता है और कभी लीला से नित्य में चला जाता है।''[५] ''वे (सच्चिदानन्द) ही सब कुछ हुये हैं। इसीलिये विज्ञानी इस संसार को 'आनन्द की कुटिया' देखता है। ज्ञानी के लिये यह संसार 'धोखे की टट्टी है'। रामप्रसाद ने धोखे की टट्टी कहा है।'' ''विज्ञानी को विशेष रूप से ईश्वर का आनन्द मिला है। किसी ने दूध की बात-ही-बात सुनी है। किसी ने दूध देखा भर है और किसी ने दूध पिया है। विज्ञानी ने दूध पिया है, पीकर स्वाद लिया है और हृष्ट-पुष्ट भी हुआ है।''[६]

''जो केवल ज्ञानी हैं, उन्हें डर लगा रहता है। जैसे शतरंज खेलते समय कच्चे खिलाड़ी सोचते हैं, किसी तरह गोटी उठ जाये, तो जी बचे। विज्ञानी को किसी बात का डर नहीं रहता है। उसने साकार और निराकार दोनों को देखा है। ईश्वर के साथ उसने बातचीत की है, ईश्वर का आनन्द पाया है। उनका स्मरण करते हुये यदि उसका मन अखण्ड सच्चिदानन्द में लीन हो जाता है, तो भी उसे आनन्द है और यदि मन लीन न भी हो, तो लीला में रहकर भी आनन्द पाता है।''[७]

५ अगस्त, १८८२ को श्रीरामकृष्ण देव का विद्यासागरजी से वार्तालाप हो रहा है। उस प्रसंग में श्रीरामकृष्ण ने ज्ञानी के सम्बन्ध में बताया कि ज्ञानी 'नेति नेति' – ब्रह्म यह नहीं है, वह नहीं है, अर्थात् कोई ससीम वस्तु नहीं है, यह विचार करके सब विषय-बुद्धि छोड़े, तब ब्रह्म को जान सकता है। जैसे कोई जीने की एक-एक सीढ़ी पार करते हुये छत पर पहुँच सकता है। पर विज्ञानी, जिसने विशेष रूप से ईश्वर से मेल-मिलाप किया है और भी कुछ दर्शन करता है, वह देखता है कि जिन चीजों से छत बनी है, उन ईंटों, सुर्खी से जीना भी बना है। 'नेति नेति' करके जिस ब्रह्मवस्तु का ज्ञान होता है, वही जीव और जगत होती है। विज्ञानी देखता है कि जो निर्गुण है, वही सगुण भी है।[८]

...'विज्ञानी' देखता है कि ब्रह्म अटल, निष्क्रिय, सुमेरुवत् है। यह संसार उसके सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणों से बना है, पर वह निर्लिप्त है। 'विज्ञानी' देखता है कि जो ब्रह्म है, वही भगवान है, जो गुणातीत है, वही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान है। ये जीव और जगत, मन और बुद्धि, भक्ति, वैराग्य और ज्ञान, सब उसके ऐश्वर्य हैं।[९]

''ज्ञानी देखते हैं, वे ही कर्ता हैं। सृष्टि, स्थिति तथा संहार कर रहे हैं। विज्ञानी देखता है कि वे ही यह सब बने हुये हैं।''[१०]

''जो केवल ज्ञानी है, वह एक ही प्रकार के बहाव में पड़ा रहता है। बस यही सोचता रहता है कि यह नहीं, यह नहीं, यह सब स्वप्नवत् है।''[११]

सरल शब्दों में किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में सामान्य सूचना या जानकारी ज्ञान है और उस विषय के सम्बन्ध में विशेष रूप से अनुभवजन्य ज्ञान विज्ञान है। जैसे जल पीने और अन्य व्यावहारिक कार्यों में लगता है यह सामान्य ज्ञान है, जल से बिजली पैदा की जाती है, यह विज्ञान है। सूर्य की किरणें धरती पर अपनी ताप से लोकमानस को समयानुसार सुखी करती हैं और लोक की जीवनदायिनी हैं, किन्तु सूर्य से सौर्य ऊर्जा के द्वारा बिजली उत्पादन कर उसका लोकहित में विभिन्न उपयोग विज्ञान है। वायु मानव की प्राणशक्ति है, किन्तु वायु से बिजली उत्पादन और उसका प्रयोग विज्ञान है।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य को केवल मनुष्य जाननेवाला अज्ञानी है। उसमें दैवी ईश्वरीय गुण विद्यमान हैं, यह जाननेवाला ज्ञानी है, किन्तु मनुष्य में भगवान हैं, ऐसा हृदय से बोध कर उनके साथ वैसा दिव्य व्यवहार करनेवाला विज्ञानी है। स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं, मैं उस प्रभु का पूजक हूँ, जिन्हें अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं। विज्ञान वस्तुविषयक भ्रान्ति और भय को मिटाता है तथा वस्तुस्थिति को स्पष्ट करता है। इसलिये विज्ञानी शोक, मोह, भय-भ्रान्ति और समस्त बन्धनों से मुक्त रहता है। तभी श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा, हे अर्जुन इन्द्रियों का निग्रह कर ज्ञान-विज्ञान के नाशक पापी काम को मारो –

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान-विज्ञाननाशनम्।।[१२]

अत: हम अज्ञान से मुक्त हो, ज्ञान के अतीत जाकर विज्ञानी बनकर जीवन के सभी द्वन्द्वों से मुक्त होने का प्रयत्न करें। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीमद्भगवद्गीता, ७/२ **२.** श्रीरामकृष्णवचनामृत १/४६ **३.** अमृतवाणी पृ. २२५ **४.** वचनामृत १/५४८ **५.** वही, १/५४९ **६.** वही, १/५५० **७.** वही, १/५५० **८.** वही, १/ ४३ **९.** वही, १/४४ **१०.** वही, १/५०२ **११.** वही, १/५५१ **१२.** गीता ३/४१

श्रीरामकृष्ण देव जयन्ती विशेष

शिवभाव से जीव-सेवा

स्वामी अलोकानन्द, वाराणसी

अनुवाद – उत्कर्ष चौबे, बी.एच.यू., वाराणसी

'शिवभाव से जीव-सेवा' एक बहुचर्चित एवं बहुवितर्कित विषय है। नित्यानन्द को प्राप्त करने के लिये सभी सांसारिक सुखों को त्याग करनेवाले तथा ब्रह्म की शाश्वत शुद्ध-बुद्ध-मुक्त प्रकृति की अनुभूति करनेवाले जो लोकालय से बहुत दूर चले जाते हैं, ऐसे संन्यासियों को सेवा कार्य में संलग्न देखकर रूढ़िवादी मठवासी साधु क्रोधित हुए तथा बहुत विरोध भी किया। समाज के अन्य वर्गों के लोगों को भी स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित इस महान व्रत के धारक एवं संवाहक संन्यासियों के प्रति सन्देह था। अन्ततः लगभग सभी लोग इस आदर्श की यथार्थता पर सहमत हुए। यहाँ तक कि रूढ़िवादी मठवासी साधु भी अब इस सेवाव्रत को साधना के एक भाग के रूप में अपनाते हुए देखे जा रहे हैं। चिन्तनीय बात यह है कि स्वामी विवेकानन्द को यह विचार कहाँ से मिला? क्या यह भारतीय आदर्शों का पुनरुत्थान है या उन्होंने पश्चिम से उधार लिया है? क्योंकि, पश्चिमी देशों में 'सेवा' या 'सर्विस' दैनन्दिन पाँच सत्कर्मों में एक कर्म के रूप में साधारणतः प्रचलित है। जब स्वामी विवेकानन्द जीवित थे, तब कुछ लोगों के मन में यह शंका उत्पन्न हुई और उन्होंने शास्त्रीय तर्कों से उसे दूर किया। बाद के वर्षों में इस पर बहुत चर्चा हुई, लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में भी कुछ लोगों के मन में वह संशय जाग्रत है। अतः इस लेख में मैं 'शिवभाव से जीवसेवा' के शास्त्रोक्त प्रकरण को श्रवण, तर्क और अनुभूति की दृष्टि से परखने का प्रयास करूँगा और दिखलाऊँगा कि यह हमारे पारम्परिक आदर्शों का समसामयिक प्रयोग मात्र है।

श्रुति के आलोक में 'शिवभाव से जीवसेवा'

परब्रह्म को प्रतिपादित करनेवाले उपनिषद् कहते हैं –'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'। अर्थात् वही एक अद्वितीय परमानन्द स्वरूप ब्रह्म ही स्वरूपों में विराजित तथा सर्व जीवों में अधिष्ठित है। ईशोपनिषद में है – 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।' गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – ''वासुदेवः सर्वमिति।'' दुर्गासप्तशती में 'या देवी सर्वभूतेषु' कहा गया है।

वेदान्त के प्रसिद्ध चारों महावाक्यों में – 'अयमात्मा ब्रह्म', 'प्रज्ञानं ब्रह्म' और तत्त्वमसि' – इन तीन उपदेशपरक वाक्यों को गुरुमुख से श्रवण कर यथासाध्य साधना करने पर 'अहं ब्रह्मास्मि' – इस अनुभवात्मक वाक्य में कथित ब्रह्मात्मैक्यता की उपलब्धि कर साधक कृतकृत्यता का बोध करता है। इस उपलब्धि के द्वारा ही वह 'सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः' परम प्रेममय का दर्शन करता है। केनोपनिषद में कहा गया है – 'भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति' – सभी प्राणियों में उन्हें जानकर धीर पुरुष इस संसार से निवृत्त होकर अमृत हो जाते हैं। श्रीभगवान भी गीता में कहते हैं –

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।

– संयतन्द्रिय निष्पाप, संशयरहित ऋषिगण सर्वभूतों के हित में रत होकर ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करते हैं।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।

– सकल इन्द्रियों को सम्यक् रूप से संयत करके, सर्वत्र समबुद्धि अर्थात् ब्रह्मबुद्धि युक्त होकर सकल भूतों के हित में रत होकर वे सभी मुझे ही प्राप्त होते हैं।

स्कन्द उपनिषद में जीव के शिवस्वरूपत्व के विषय में स्पष्ट ही कहा गया है –

जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।
तुषेण बद्धौ व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः।।

– जीव ही शिव है, शिव ही जीव है, वह जीव ही अद्वितीय शिव है, जैसे तुष द्वारा आवृत रहने से धान्य तथा तुषमुक्त होने से तन्दुल अर्थात् चावल होता है। श्रीमद्भागवद महापुराण में भी कहा गया है –

मनसैतानि भूतानि प्रणमैतद्बहुमानयन्।
ईश्वरौ जीवकलया प्रविष्टौ भगवानिति।।

– ईश्वर जीवरूप धारण करके सभी जीवों में प्रविष्ट हुए हैं, इस ज्ञान का अवलम्बन करके सकल जीवों को प्रणाम करना।

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा।।

– सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर घर बनाकर उन प्राणियों के ही रूप में स्थित मुझ परमात्मा का यथायोग्य दान, मान मित्रता के व्यवहार तथा समदृष्टि के द्वारा पूजन करना चाहिए। आचार्य शंकर कहते हैं – 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' – जीव ब्रह्म ही है, अन्य कुछ नहीं है।

युक्ति-विचार द्वारा 'शिवभाव से जीव-सेवा'

श्रुति अर्थात् शास्त्रों में जिस जीवन के शिवस्वरूपत्व का उल्लेख हुआ है, उसे युक्ति-विचार से चिन्तन करना आवश्यक है। वेदान्त दर्शन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शुद्ध चैतन्य ही उपाधियों के संयोग से जीव के रूप में प्रतिभात होता है। वस्तुतः वह शुद्ध चैतन्य ही है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' जैसे श्रुति वाक्यों के माध्यम से ब्रह्म की सर्वव्यापकता बतायी गई है। इस सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभूति से ही जीव को परमानन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु सर्वव्यापी ब्रह्म अथवा आत्मा की धारणा करना सीमित बुद्धि द्वारा जीव के लिए असम्भव है। आत्मा सबका प्रिय है। श्रुति कहती है – **'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'** (बृहदारण्यक उपनिषद २/४/५) – आत्मा के लिये ही सभी वस्तुएँ प्रिय हैं। इसलिए प्रिय स्वरूप आत्मा की उपासना करना ही कर्तव्य है। तभी तो श्रुतिवाक्य है – **'आत्मानमेव प्रियमुपासीत्'।** सामान्य साधकों के लिए उपासना के द्वारा सर्वोत्कृष्ट व सर्वव्यापी ब्रह्म के चिन्तन में निमग्न रहने का उपदेश उपनिषदों में विस्तृत रूप से दिया गया है। इस उपासना में प्रत्येक वस्तु को प्रतीकात्मक रूप से उसकी ब्रह्म भावना का उपदेश किया गया है। आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहते हैं – ''**अत्र ब्रह्मणः उपास्यात्वं यत् प्रतीकेषु तद्दृष्ट्याध्यारोपणं प्रतिमादिषु इव विष्णवादीनाम्**'' – जिस प्रकार प्रतिमादि में विष्णु आदि दृष्टि आरोपित की जाती है, उसी प्रकार प्रतीकों को भी ब्रह्म-दृष्टि से आरोपित किया जाता है। प्रतीकोपासना वस्तुतः ब्रह्म की ही उपासना है। उपाधिविशिष्ट चैतन्य जीव के रूप में प्रतिभात होने से भी चैतन्य ही है। जड़ वस्तुओं में चेतन की उपासना सम्भव होने से जीवन्त मनुष्य में भी तद्रूपानुसार उपासना भी अवश्य सम्भव है।

श्रीमद्भागवत में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां कुरुते अर्चाविडम्बनम्।।
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चा भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः।।

– मैं सर्वभूतों की आत्मारूप में सर्वदा अवस्थित हूँ, किन्तु विडम्बना यह है कि वह मनुष्य मेरी अवज्ञा कर के केवल प्रतिमा-पूजा में रत रहता है। मैं सभी प्राणियों में विराजमान हूँ, सभी की आत्मा एवं ईश्वर हूँ, जो व्यक्ति मूढ़तावश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमा-पूजा करता है, मानो वह केवल भस्म में ही आहुति प्रदान करता है।

अज्ञानतावश सर्वव्यापी निजसत्ता को बोधगम्य न करके जीव भेद-बुद्धि करता है एवं एक-दूसरे से विद्वेष व ईर्ष्या करता है। जीव की अवधारणा से ही भेद-बुद्धि होती है।

आचार्य व शास्त्रों द्वारा – **'तत्त्वमसि'** – तुम ही वह परम तत्त्व हो – एवं सर्वभूतों में तुम्हारी ही सत्ता विराजित है, ऐसा उपदेश श्रवण करके साधना की सहायता से अविद्या-माया का नाश होने से बोध होता है – 'मैं ही सर्वत्र विराजित हूँ।'

गीता में भगवान ने उसे ही सर्वत्र समदर्शी कहा है। 'सम' अर्थात् ब्रह्म को जो सर्वत्र दर्शन करता है। उसके पास जब भेद ही नहीं होता, तो स्वत: विद्वेष भी नहीं होगा। श्रुति इसी समदर्शित्व का फल कहती है –

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

अर्थात् जो समस्त भूतों को अपने में और समस्त भूतों में स्वयं को देखता है, वह किसी से घृणा नहीं करता है। अपितु आत्म-भाव से, शिव-भाव से उसकी सेवा करता है। शंकराचार्यजी विवेकचूडामणि ग्रन्थ में कहते हैं – **'सर्वात्मता बन्धविमुक्ति हेतुः सर्वात्मभावान्न परोऽस्ति कश्चित्।।'** एकात्मदृष्टि ही बन्धन से मुक्ति का कारण है। सर्वात्मभाव का अनुभव छोड़कर बन्धन से मुक्ति व उत्कृष्टता का और कोई उपाय नहीं है। सब कुछ आत्मस्वरूप है, सभी शिव ही हैं। शिव-भाव से जीव-सेवा का यही अन्तर्निहित भाव समझा जा सकता है।

जब अवस्तु में वस्तु की भावना की जाती है, प्रतीकों में अथवा प्रतिमा में ब्रह्म की भावना करके ब्रह्मस्वरूपता प्राप्त होती है, ईश्वर की पूजा की जाती है, सेवा की जाती है, तो जीवन्त मनुष्य में वह क्यों नहीं सम्भव हो सकता? भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'प्रतिमा में ईश्वर की पूजा होती है और जीवन्त मनुष्य की क्या नहीं हो सकती? वही मनुष्य का रूप धारण कर लीला करते हैं।'

समसामयिक दो वेदान्त-मर्मज्ञ, विदग्ध पण्डितों का तत्त्वविचार यहाँ अप्रासंगिक नहीं है। वे हैं पण्डित इन्द्रदयाल भट्टाचार्य जो संन्यास लेकर स्वामी प्रेमेशानन्द और श्री राजेन्द्रनाथ घोष जो स्वामी चिद्घनानन्द पुरी के नाम से विख्यात हैं। राजेन्द्रनाथ घोष विद्वान पण्डित थे, जिन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की तथा आजीवन वेदान्तशास्त्र के चिन्तन में रत रहे। रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा में उनकी अटूट श्रद्धा रहने पर भी उन्हें केवल सेवायोग के विषय में ही संशय था। विरजाहोम की अग्नि में सर्वस्व समर्पण कर, एषणात्रय का परित्याग कर ब्रह्म-चिन्तन में जो संन्यासी व्रती हुआ है, वही संन्यासी अब कर्म में कैसे लिप्त होगा? 'अहम् ब्रह्मास्मि' की साधना न कर आर्त, पीड़ित, मूर्ख, दरिद्र मनुष्यों की सेवा में दिवा-रात्रि कैसे नष्ट करेगा? यह क्या वेदान्त का अपप्रयोग नहीं? संन्यास की अमर्यादा नहीं है? इस संशय के कारण रामकृष्ण संघ में संन्यासी के रूप में योगदान करने की इच्छा रहने पर भी संशय रूपी डोली में झूलते हुए राजेन्द्रनाथ घोष नित्य ही मानसिक अशान्ति में रहते थे। अन्ततः इस शंका के समाधान के लिए वे हृषिकेश स्थित स्वर्गाश्रम में प्रवासरत स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के पास उपस्थित हुए। दोनों दक्ष वेदान्तियों में चर्चा होने लगी। जिस सिद्धान्त के उल्लेख ने राजेन्द्रनाथ की जीवन का लक्ष्य स्थिर कर दिया था, उसे स्वामी प्रेमेशानन्द जी की ही यथार्थ भाषा में 'शिव-भाव से जीव सेवा' का शास्त्र प्रमाण वाक्य हमारी युक्ति को और सबल करता है। वे कहते हैं – ''राजेन्द्र बाबू जितना मैंने समझा है, महावाक्य निहितार्थ के विषय में आपका किसी भी प्रकार से कोई संशय नहीं है। आपने कहा 'अहं ब्रह्मास्मि', मैं भी तो वही कहता हूँ – 'अहं ब्रह्मास्मि'। आप स्वयं को ब्रह्म ही समझते हैं और बोलते भी हैं। मैं भी अपने आप को वही समझता हूँ और व्यक्त करता हूँ। आप जो ब्रह्म हैं, मैं भी तो वही ब्रह्म हूँ। अब देखिए आपने मुझे सुनाया – 'तत् त्वम् असि' – मैं भी तो आपको वही बात सुनाता हूँ – 'तत् त्वम् असि'। इस बार भी तो एक ही बात हुई अर्थात् ब्रह्म ही ब्रह्म को निर्देशित कर रहा है – 'तुम भी वही हो – एक अभिन्न ब्रह्म'। अच्छा राजेन्द्र बाबू, अब आप स्पष्ट रूप से कहिए, यदि मैं रोगग्रस्त होकर शय्या पर पड़ जाऊँ, तो क्या मैं ब्रह्म नहीं रहूँगा तब? मुझे यदि आप थोड़ा जल पिला दें अथवा पंखा झल दें, तो वह क्या ब्रह्म की सेवा नहीं होगी? अथवा पीड़ित ब्रह्म की सेवा करने से कर्म-बन्धन में पड़ जाने के भय से आप रुग्ण अवस्था में मेरा त्याग करके चले जायेंगे? श्रीरामकृष्ण ने हमें यही शिक्षा दी है – शिवभाव से जीव सेवा। उनके मुख से उच्चारित महावाक्य – 'यत्र जीव तत्र शिव' है। स्वामीजी ने भी इसी प्रकार से हमलोगों को उपदेश दिया है –

ब्रह्म और परमाणु कीट तक, सब भूतों का है आधार।
एक प्रेममय, प्रिय, इन सबके चरणों में दो तन-मन वार।।

''शास्त्रों के साथ फिर आपने कहाँ विरोध देखा? महावाक्य और प्रेषमंत्र के श्रवण के पश्चात् यदि कोई सर्वभूतान्तरात्मा ब्रह्म की सेवा में आत्मनियोग करता है, तो क्या वह वाक्य उसकी साधना का अंग नहीं है? इस साधना को बन्धन समझ कर आप व्यर्थ ही अपने मन को भ्रमित कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द का भाव-सर्वांश ही वेदान्त साधन अर्थात् अद्वैत तत्त्व का वास्तविक प्रयोग है। उनके द्वारा उपदिष्ट यह सेवा ब्रह्म की ही उपासना है,

इस अद्वैत तत्त्व के रस में अपने को पूर्णत: निमग्न करना ही है। उस सेवा को आपने साधारण कर्म कैसे मान लिया? श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने षष्ठ अध्याय का आरम्भ ही इसी अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं से की है। हाँ, किन्तु कर्मफल से अनाश्रित होना ही होगा, अन्यथा सेवा सेवा ही नहीं होगी। वास्तविक बात यही है। किन्तु हम लोगों का जो आदर्श है, वह शुद्ध अनाश्रित-कर्मफल ही साधन का सूत्र है। ठाकुरजी और स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित सेवायोग सम्पूर्ण रूप से वेदान्त निर्दिष्ट चरमतम साधना है, जो महावाक्य विचार करने का व्यावहारिक प्रयोग है।''

अनुभवोज्ज्वल 'शिव-भाव से जीव-सेवा'

श्रुति के आलोक में तथा युक्ति-विचार के द्वारा जिस 'शिव भाव से जीव सेवा' के आदर्श को हमलोगों ने देखा, वह वस्तुत: अनुभव के आलोक में आलोकित है। भगवान श्रीरामकृष्ण ने इसी सनातन आदर्श को दक्षिणेश्वर में अपने साधनापीठ पर सुदीर्घ साधना के द्वारा उपलब्धि कर इसका वास्तविक प्रयोग किया था।

साधारण जनता के सम्मुख प्रचार करने से पूर्व उन्होंने इस सेवा के आदर्श को अपनी काशी यात्रा के पथ पर देवघर के समीप ग्राम के जीर्ण-शीर्ण-कंकालकाय मनुष्यों की सेवा के द्वारा रूपायित किया था। उन सभी को लगाने के लिए तेल, पहनने के लिए कपड़े और भरपेट भोजन की व्यवस्था करने के समय मथूर बाबू अत्यधिक पैसे खर्च होने के भय से सेवा नहीं करना चाहते थे। किन्तु श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – ''तुम्हारी काशी मैं नहीं जाऊँगा। मैं इन्हीं लोगों के पास रहूँगा। इनका अपना कोई नहीं है, इन्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।'' मथूर बाबू को शिवस्वरूप जीवों के दुख से द्रवित भगवान श्रीरामकृष्ण के धनुषभंग के प्रण को अन्त में मानना पड़ा था।

भगवान श्रीरामकृष्ण ने इस भाव के परवर्तीवाहक नरेन्द्रनाथ दत्त को भी, ''तुच्छं ब्रह्मपदमपि' कहकर शिवभाव से जीवसेवा के लिए उत्साहित किया था। एक दिन उन्होंने नरेन्द्र से जिज्ञासा किया – 'तुम क्या चाहते हो, बोलो?' नरेन्द्र ने कहा – ''मेरी इच्छा है, शुकदेव की भाँति एक साथ पाँच-छह दिन तक समाधि में डूबा रहूँ। इसके बाद केवल देह रक्षार्थ थोड़ा नीचे आकर पुन: समाधिमग्न हो जाऊँ।'' यह सुनकर भगवान रामकृष्ण देव ने उनका तिरस्कार करते हुए कहा – 'छी: ! छी: ! तुम्हारा इतना बड़ा आधार है और तुमने अपने मुख से ऐसी बात कही ! मैंने सोचा था कि कहाँ तुम एक वट वृक्ष के समान होओगे, जिसकी छाया में हजारों लोगों को आश्रय मिलेगा। ऐसा न होकर कहाँ तुम अपनी ही मुक्ति चाहते हो !'

श्रीरामकृष्ण ने अपने अनुभव को व्यक्त करते हुये कहा था – 'वे मनुष्य होकर लीला करते हैं। मैं देखता हूँ, साक्षात् नारायण। अरणि मंथन से जैसे अग्नि का आविर्भाव होता है, वैसे ही भक्ति के बल पर मनुष्यों में ही ईश्वर दर्शन होता है।... प्रतिमा में पूजा होती है, तो जीवन्त मनुष्यों में क्यों नहीं?''

१८८४ में किसी समय भक्तों के सम्मुख श्रीरामकृष्ण ने विमर्श करते हुए वैष्णव धर्म के मूलभूत तीन तत्त्वों के विषय में कहा था – ''नाम में रुचि, जीवों पर दया, वैष्णव सेवा।' 'नाम में रुचि' व 'वैष्णव सेवा' को लेकर तो कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, किन्तु 'जीवों पर दया' बोलते हुए ही भगवान समाधिस्थ हो गये। समाधि टूटने पर उन्होंने कहा – ''जीवों पर दया ! हट साला ! कीटाणु-कीट तुम जीवों पर दया करोगे? दया करने वाले तुम कौन हो? नहीं, नहीं, जीवों पर दया नहीं – 'शिवभाव से जीव-सेवा।'

उपस्थित भक्तों में वहाँ स्वामी विवेकानन्द (तत्कालीन नरेन्द्र) भी थे। इस प्रसंग से उन्हें प्रेरणा मिली। वे कहते हैं – ''कैसा अद्भुत आलोक आज ठाकुरजी की बातों से मिला! ... जो हो, यदि ईश्वर ऐसी व्यवस्था करें, तो फिर आज जो सुना, उस अद्भुत सत्य को संसार में चहुँओर प्रचारित करूँगा – पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, ब्राह्मण-चाण्डाल सभी को सुनाकर मुग्ध करूँगा।''

इसी सारगर्भित तत्त्व को मन में रखकर स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारतवर्ष का परिभ्रमण किया। भारत के जनगण की दुर्दशा का दर्शन कर इसके उद्धार के उपाय का चिन्तन किया। इसके निदान हेतु पाश्चात्य गये और पुन: भारत में वापस आकर इस आदर्श के रूपायन हेतु संघ की स्थापना की। आत्मलाभेच्छु संन्यासी गुरु-भ्राताओं को गहन गम्भीर गिरिकन्दराओं से बाहर लाकर प्रत्यक्ष ब्रह्म की उपासना में, जीवरूपी शिव की सेवा में, नर-नारायण की सेवा में संलग्न किया। वज्र-निर्घोष की भाँति उन्होंने उस महामंत्र को उच्चारित किया –

बहुरूपों में खड़े तुम्हारे सम्मुख, और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज, यह जीव-प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश।।

उपसंहार – उपसंहार के रूप में हम कह सकते हैं कि वैष्णव शास्त्रों में वर्णित 'जीवों पर दया' का आदर्श ही वेद-मूर्ति श्रीरामकृष्ण द्वारा युग प्रयोजनार्थ संशोधित हुआ – 'शिवभाव से जीव सेवा। शिव शब्द यहाँ व्यापक अर्थ में ग्रहणीय है। एक परमात्मा ही विविध रूपों में विराजमान हैं। वे सर्वव्यापी नारायण हैं, सर्वदा कल्याणमय शिवस्वरूप हैं, निश्चित रूप से उन पर कोई दया नहीं करेगा, वरन् उनकी पूजा, सेवा ही करेगा। 'दया' में आधिपत्य की सूक्ष्म छाया होती है, सेवा या पूजा में नहीं। यह नि:स्वार्थ प्रेम से प्रेरित है। कैथोलिक ननों की सेवा मुख्य रूप से दया या करुणा में से एक है। चूँकि उन्होंने द्वैत पर बल दिया है, इसलिए सेव्य और सेविका के बीच अन्तर होना स्वाभाविक है। अद्वैत भावदर्शन में सेव्य और सेवक के बीच कोई अन्तर नहीं है। सर्वत्र समदर्शी की आत्मचेतना में ही पूजा या सेवा है। स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में यह आदर्श व्यक्त किया था : ''वह (सर्वेश्वर आत्मा) सामूहिक रूप में सबको दिखाई भी देता है। इसलिए जब जीव और ईश्वर प्रकृति रूप से समान है, तो जीव की सेवा और ईश्वर में प्रेम एक समान है। विशेषकर, जीव-भाव से जीव की जो सेवा की जाती है, वह दया है, प्रेम नहीं और आत्मभाव से जो प्राणी की सेवा की जाती है, वह प्रेम है ...अद्वैतनिष्ठा नहीं होने से हमारा जीव-भाव बन्धन का कारण है। इसलिए हमारा सहारा प्रेम है, दया नहीं ...हम दया नहीं करते, हम सेवा करते हैं। हमारे मन में किसी पर दया करने की भावना नहीं है, बल्कि हम सभी के प्रति प्रेमानुभूति व आत्मानुभूति करने का प्रयास करते हैं।''

आचार्य शंकर अपने आत्मपूजा-स्तोत्र में स्पष्ट रूप से कहते हैं – ''**देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः।**'' विवेकचूडामणि ग्रन्थ में भगवान शंकराचार्य महापुरुषों के लक्षण के विषय में कहते हैं – '**वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः**' महापुरुषगण बसन्त ऋतु के समान लोक-कल्याण, मानवों का कल्याण करते हुये विचरण करते रहते हैं। किन्तु यह सेवा पाश्चात्य देशों की सेवा नहीं, यह 'जीवो देव: सदाशिव:' की भावना से होती है। स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था – ''जिस क्षण मैं प्रत्येक मानव-देह रूपी मन्दिर में बैठे भगवान की उपलब्धि कर सकूँगा, जिस क्षण मैं प्रत्येक मानव के सामने सम्मानपूर्वक खड़ा हो सकूँगा और वास्तव में उनमें भगवान को देखूँगा, जिस क्षण यह भावना मुझमें आयेगी, उसी क्षण मैं सभी बन्धनों से मुक्त हो जाऊँगा, शेष सब अन्तर्हित हो जाएगा, मैं मुक्त हो जाऊँगा।''

अन्तत: भारतीय सनातन शास्त्र में निहित 'शिवभाव से जीवसेवा' का आदर्श श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से पुन: संशोधित होकर युग-प्रयोजनानुसार स्थापित किया गया। युग प्रयोजनार्थ आचार्य शंकर ने लम्बे समय से लुप्त देवविग्रहों को पुनरुद्धार कर मन्दिरों में पंचदेवताओं की पूजा को लोकप्रिय बनाया। १९वीं सदी में फिर से श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने देवताओं को मन्दिरों तक ही सीमित न रखकर 'शिवभाव से जीवसेवा' के माध्यम से घर-घर में देवताओं की पूजा प्रारम्भ की। ○○○

कविता

आजु काशी फाग मचावे जोगिया

डॉ. अनिल कुमार फतेहपुरी, गया, बिहार

खेलत होली शिव त्रिपुरारी,
संग लिये गिरिजा सुकुमारी ।
डमरू डिमिक बजावे जोगिया,
आजु काशी फाग मचावे जोगिया ।।
शिवगण नाचत दै दै तारी,
निज तन मन के सुधि बिसारी ।
सुतल मशान जगावे जोगिया, आजु काशी ..
शिव मारत भरी भरी पिचकारी,
गौरी के भींगत नूतन सारी ।
गगन गुलाल उड़ावे जोगिया, आजु काशी ...
नन्दी-भृंगी झाल बजावत,
देव दनुज सब फागुन गावत ।
सकल भुवन हरसावे जोगिया, आजु काशी ...
कोटिक काम के शम्भु लजावत,
जाकर भगत अयाचित पावत ।
सब संताप मिटावे जोगिया, आजु काशी ...
जगदम्बापति सर्वहितकारी,
नर-पामर के तारणहारी ।
भव से पार लगावे जोगिया, आजु काशी ..

रामगीता (५/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

हमारे पास आज एक सज्जन आए थे, बड़े जिज्ञासु थे, अभी शायद कथा में हों। उन्होंने कहा कि अब तो हमारे व्यवहार में, परिवार में भी द्वैत ही द्वैत का प्रदर्शन होता है। परिचय भी देंगे, तो यही कहकर कि यह मेरा बेटा है, यह मेरे भाई का बेटा है। तो भाई के बेटे को अब हम अपना बेटा कहने को प्रस्तुत नहीं हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि यह जो द्वैत है, यही व्यक्ति के जीवन में क्रोध उत्पन्न करता है। क्रोध दूसरे पर आता है। जहाँ द्वैत नहीं है, वहाँ क्रोध नहीं है। किसी से आपका पैर दब जायेगा, तो आपको क्रोध आयेगा। लेकिन जब आपके दाँत से जीभ दब जाय, केवल दब ही नहीं जाती, कभी-कभी कट भी जाती है, तब क्या आपको अपने दाँत पर कभी इतना क्रोध आता है कि दाँत को दण्ड मिलना चाहिए। क्या डॉक्टर से कहेंगे कि इसने मेरे जीभ को काट लिया, इसलिए इसको उखाड़ कर फेंक दीजिए? ऐसा तो आप कभी नहीं करते, क्योंकि दाँत और जीभ में आपको एकत्व की अनुभूति होती है। भगवान ने अपने विज्ञान के धनुष के द्वारा द्वैत बुद्धि को मिटा दिया। एक ही बाण का अभिप्राय यह है कि तुम क्यों क्रोध करती हो? क्रोध तुम्हें इसलिए हो रहा है कि तुम यह सोच रही हो कि यह राजकुमार मेरा शत्रु है। मुझे मारने आया है। मैं तुमसे अलग कहाँ हूँ? दूर से देखकर लगा, पर अब तुम अनुभव करो। तुम मुझमें ही हो, मुझसे एकाकार हो।

दुराशा से क्रोध आता है, कामना में बाधा पड़ने पर क्रोध आता है, द्वैत बुद्धि से क्रोध आता है। भगवान ने सबसे पहले विज्ञान के धनुष के द्वारा दुराशा को नष्ट कर दिया। दुराशा को मानो एक उलटा क्रम दे दिया। आशा अगर करना ही है, तो वह आशा संसार के लोगों से न करके भगवान से करें –

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।। ७/४५/३

मुझ पर विश्वास करते हो, तो अगर आशा ही करना है, तो मुझसे कर लो। इस तरह से भगवान की यात्रा का प्रारम्भ होता है। भगवान के द्वारा दुराशा का, द्वैत वृत्ति का विनाश द्वैत को अद्वैत में परिणत करके किया जाता है। अब ताड़का में और भगवान में कोई भेद नहीं है। ये पहले महापुरुष हैं।

दूसरे महापुरुष महाराज जनक हैं। महाराज जनक की समस्या दूसरे प्रकार की है। परशुरामजी की समस्या उनके जीवन में नहीं है। उनके जीवन की समस्या क्या है? विषय तो थोड़ा गम्भीर है। विषय का चयन स्वामीजी ने किया। विषय कठिन है, पर जटिल नहीं है। अब उस जटिलता को सरल बनाना तो आप पर निर्भर है। अकेले मेरे बस की बात नहीं है। मन-बुद्धि-चित्त लगा दीजिए, तो बड़ा सरल लगेगा। जनकजी की समस्या क्या है? वे भी एक यज्ञ कर रहे हैं। वे यज्ञ किसलिए कर रहे हैं? यज्ञ का नाम भी धनुष-यज्ञ है। यह भी एक यज्ञ का नाम है। आप समाचार पत्रों में पढ़ रहे होंगे, सुन रहे होंगे, यहाँ रुद्र-यज्ञ हो रहा है, कहीं बाजपेय-यज्ञ हो रहा है, विष्णु-यज्ञ हो रहा है, अश्वमेध-यज्ञ हो रहा है। पर यह तो धनुष-यज्ञ था। धनुषधारी राम धनुष-यज्ञ में पधारे हुए हैं। वहाँ सारे संसार के राजा एकत्र हैं। जनकजी की क्या समस्या है? उन्हें अपनी पुत्री सीता के लिए योग्य वर चाहिए। उसका बहिरंग रूप तो यही है कि सीता के लिए योग्य वर कैसे प्राप्त हो ! तब जनकजी ने एक अनोखी

प्रतिज्ञा की। विश्वामित्रजी ने भगवान राम से बाण चलवाया और उसके द्वारा उनकी समस्या का समाधान हो गया। पर जनकजी की समस्या तो बड़ी विचित्र है। उस समस्या के लिए उन्होंने एक नया रूप प्रस्तुत किया कि शिवजी का धनुष यहाँ है, अन्य कोई इस धनुष को चलानेवाला नहीं है। भगवान शिव तो इसे चला चुके हैं। अब अगर कोई तोड़नेवाला होगा, तो वही मेरी कन्या के लिए योग्य वर होगा। बड़ा कठिन से कठिन सूत्र है।

इसका अभिप्राय यह है कि भगवान शंकर समष्टि अहंकार के देवता हैं। उनका यह धनुष एक सात्त्विक अहंकार, एक दिव्य अहंकार है। भगवान शंकर शिव हैं और उन्होंने जगत के कल्याण के लिए इस दिव्य सात्त्विक अहंकार को क्षणभर के लिए स्वीकार किया है। त्रिपुरासुर, तारकासुर का विनाश भगवान शिव ने इसी धनुष के द्वारा किया। उसके बाद उन्होंने जिस धनुष के द्वारा इतनी बड़ी विजय प्राप्त की उसे छोड़ दिया। उस धनुष को भगवान शंकर ढोते नहीं रहते। जैसाकि अधिकांश कोई कार्य करने के बाद लोग करते हैं। भले ही वह कार्य समाप्त हो गया, लेकिन वे लोग अपने कर्त्तव्य को ढोते ही रहते हैं, प्रदर्शित करते रहते हैं, दिखाते रहते हैं। किन्तु भगवान शिव की महानता क्या है? उनकी महानता यह है कि उन्होंने उस धनुष का उद्देश्य पूरा हो जाने के बाद उसे जनक को दे दिया। पर आश्चर्य है कि जनकजी की प्रतिज्ञा परशुरामजी को बड़ी मूर्खतापूर्ण लगती है। आप पढ़ते हैं कि परशुरामजी धनुष टूटने के बाद जब पधारे तब उन्होंने जनकजी से प्रश्न किया –

कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा। १/२६९/३

– अरे मूर्ख जनक, यह धनुष किसने तोड़ा? यह भी कह दिया कि उत्तर तुरन्त मिलना चाहिए। विलम्ब हुआ, तो? उनका स्वभाव है कि किसी अपराध का दण्ड वे केवल उस एक अपराधी को नहीं देते, बल्कि उसके आस-पास के लोग जो उसमें सम्मिलित दिखाई देते हैं या चुप रहकर उसका समर्थन करते-से लगते हैं, उनको भी वे नहीं छोड़ते। वे कहते हैं – मैंने यह नहीं कहा कि धनुष तोड़नेवाले का सिर काट लूँगा। तुम बता दोगे, तब तो उसी का सिर कटेगा और नहीं, तो मैं बता देता हूँ –

बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू।
उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू।। १/२६९/४

फिर एक दूसरी उपाधि दे दिया, अरे मूढ़ ! जहाँ तक तेरा राज्य है, उसको उलटकर मैं नष्ट कर दूँगा। जनकजी की समस्या तो बड़ी जटिल हो गई। अब वह सारा प्रश्न न तो जाति के आधार पर है और न तू-तू, मैं-मैं का है। प्रश्न यह है कि जड़ और मूर्ख कहने के पीछे भाव क्या है? धनुष की परीक्षा चलवा कर ली जाती है कि तुड़वा कर ली जाती है? प्रश्न तो सार्थक है। धनुष तो चलाने के लिये होता है। धनुष के द्वारा व्यक्ति लक्ष्य का भेद करता है। अगर किसी की योग्यता की परीक्षा लेनी है, तो कोई लक्ष्य बना दे। जो लक्ष्य को भेद कर दे, वह सफल योद्धा प्रमाणित होगा। अर्जुन की परीक्षा तो इसी प्रकार हुई थी। चंचल, यंत्रित, निरन्तर गतिशील जो मछली है, उसकी आँख को बाण से बिद्ध करना है। उसमें अर्जुन सफल हुए। अर्जुन नर हैं, पर राम तो नारायण हैं। परीक्षा तो यही है कि वह लक्ष्य-बेध करने में कितना निपुण है। अर्जुन परीक्षा में सफल हो गए। लेकिन नर की परीक्षा और नारायण की परीक्षा में तो बहुत अन्तर है। अन्तर क्या है? परशुरामजी कहते हैं कि अगर तुम सचमुच बुद्धिमान होता, अगर तुम अपनी कन्या के लिए योग्य वर की आवश्यकता का अनुभव कर रहा होता, तो धनुष पर बाण चलवाकर देख लेता और लक्ष्य-भेद के बाद तुम कन्या अर्पित कर देता। अपने आप में यह तर्क गलत प्रतीत नहीं होता। महाराज श्रीजनक उत्तर देने की स्थिति में नहीं थे – **अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। १/२६९/५**

इसकी भी चर्चा मैं कल करूँगा। **(क्रमशः)**

कविता

रामकृष्ण प्रभु का गुण गाता

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

रामकृष्ण प्रभु का गुण गाता, करके हिय में उनका ध्यान ।
देवश्रेष्ठ वे इस जग आये, करने भक्तितत्त्व आख्यान ।।
नित्य ज्ञानमय प्रेममूर्ति वे, निर्मल उर नवनीत समान ।
भक्तजनों के वे संरक्षक, करते उन पर कृपा महान ।।
वे ही प्रभु भवभयहारी हैं, सदा निरत हैं जनकल्यान ।
अपनी दिव्य कृपा वितरित कर, हरते साधकजन-अज्ञान ।।
सदा मुक्त वे जगप्रपंच से, करते प्रेमसुधा का दान ।
रामकृष्ण प्रभु पूर्ण ब्रह्म हैं, यह उनकी असली पहचान ।।

दैवी सम्पदरूप श्रीरामकृष्ण

स्वामी दयापूर्णानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

वेदमूर्ति भगवान

श्रीमत् स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने अपने अद्वितीय श्रीरामकृष्णलीला-प्रसंग ग्रन्थ की प्रस्तावना में गुरुभाव पूर्वार्ध इस अध्याय के बारे में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है। वे कहते हैं कि सनातन हिन्दू धर्म या वैदिक धर्म का श्रीरामकृष्ण के प्रकाशमय जीवन से बहुत ही गम्भीर सकारात्मक सम्बन्ध है। इस बात की पुनरावृत्ति करते हुये उन्होंने स्पष्ट रूप से विश्लेषण किया है। वे कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण के अद्‌भुत जीवन के संस्मरण से हम उन्हें वैदिक सार्वभौमिक और सनातन भाववृक्ष के सार-सिद्धान्त, समाधि के फल और योग के विमूर्त रूप को निर्धारित करने में सक्षम होंगे। उन्होंने ग्रंथ की भूमिका में श्रीरामकृष्ण के जीवन की पारम्परिक वैदिक धर्म के साथ निगूढ़ सम्बन्ध पर चर्चा की। स्वामी विवेकानन्द जी के 'हिन्दू धर्म और श्रीरामकृष्ण' निबन्ध में उन्होंने इसका प्रमाण भी दिया।

स्वामीजी ने कहा कि श्रीरामकृष्ण ने लोकहित में स्वयं वेदमूर्ति भगवान होकर जगत के समक्ष सनातन धर्म के जीवन्त उदाहरण के रूप में भगवान रामकृष्ण के रूप में अवतार लिया। श्रीभगवान का अनन्त और शाश्वत स्वरूप, जो प्राचीन धर्मग्रन्थों और धर्मों में इतने लम्बे समय तक छिपा था, फिर से प्रकट हुआ है और उच्च स्वर पर जनता के सामने घोषित किया गया है। इसलिए रामकृष्ण मठ, बेलूड़ की नियमावली में स्वामीजी ने कहा कि वर्तमान युग में श्रीरामकृष्ण के आलोक में ही शास्त्रों का अर्थ समझा जाना चाहिए।

'द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च'

महाभारत युद्ध के समय भगवान श्रीकृष्ण ने सर्व उपनिषद् सार रूपी गीता में विभिन्न सम्पदा, दैवी, आसुरी और राक्षसी का वर्णन किया है। उनमें से सात्त्विक सदिच्छा को, शास्त्रविहित कृत्य को दैवी प्रकृति कहा गया है और शास्त्रविरुद्ध राग और काम रजोगुणों से आसुरी प्रकृति कहा गया है। द्वेष आदि तमोगुणों से राक्षसी प्रवृत्ति को आसुरी प्रकृति के अन्तर्गत लिया गया है। यहाँ शुभ तथा दैवी-भाव और अशुभ वासनाओं का अन्तर बताने के लिये आसुरी और राक्षसी दोनों की प्रकृतियों को आसुरी शक्ति की सम्पदा मानी गयी है। बृहदारण्यक उपनिषद के मन्त्र में कहा गया है कि प्रजापति की सन्तानों को देवता और असुर कहा गया है, जिनमें देवता छोटे या संख्या में कम हैं और असुर बड़े या संख्या में अधिक हैं आदि।

जब कोई शास्त्रानुकूल धर्म-मार्ग पर चलता है और सांसारिक आसक्ति और आसुरी प्रकृति पर नियन्त्रण पा लेता है, तब वह व्यक्ति दैवी प्रकृति का, देव-सदृश बन जाता है। जब कोई व्यक्ति शास्त्र-विरुद्ध जाकर अपने स्वभाव को संयमित न कर दुराचारी हो जाता है, तब वह व्यक्ति पाशविक अर्थात् असुर स्वभाव का, आसुरी प्रकृति का हो जाता है – **'द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।'**

उपरोक्त उपनिषद् की व्याख्या में भाष्यकार भगवान श्रीशंकराचार्य इस प्रकार कहते हैं कि प्रत्येक जीवित प्राणी की इन्द्रिय की अपवित्र प्रवृत्ति आसुरी प्रकृति है और उनकी धार्मिक प्रवृत्ति दिव्य प्रकृति है। इन दो प्रकारों के अतिरिक्त कोई तीसरी प्रकृति नहीं है। अत: शास्त्र-निर्देश और कर्तव्य से उत्पन्न ज्ञान से परिशुद्ध हुआ इन्द्रिय ही दैवी सम्पद है

और शास्त्रनिषिद्ध ज्ञान में प्रवृत्त हुआ इन्द्रिय ही आसुरी सम्पद है। दूसरे शब्दों में, सभी भौतिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति आसुरी प्रकृति हैं और सभी आध्यात्मिक चेतना सम्पन्न प्राणी दैवी प्रकृति हैं। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर सदैव संघर्ष चलता रहता है। जब बुरी प्रवृत्ति प्रबल होती है, तो अच्छी प्रवृत्ति दैवी-भाव उनके द्वारा पराजित हो जाती है और जब धार्मिक प्रवृत्ति संघर्ष में विजयी होती है, तो बुरी शक्तियाँ उनसे पराजित तथा प्रभावित होती हैं। परन्तु देखा जाता है कि अशुभ प्रवृत्तियों की अधिकता के कारण ही आसुरी शक्ति की संख्या अधिक है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में शत कौरव पुत्र और पाँच पाण्डव भ्राता इसके उदाहरणस्वरूप हैं। यहाँ धर्म और अधर्म के अलावा और कोई तीसरा पक्ष नहीं है। यद्यपि अनेक यातनाओं के बाद भी शुभ शक्ति जीवित रहती है। इसलिए ईश्वर की इच्छा से धर्म-विजय का वर्णन किया गया है। यह बात शास्त्रों में भी स्वतन्त्र रूप से कही गयी है।

भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में भगवान कृष्ण ने अर्जुन के सामने २६ गुणों का वर्णन किया है। श्री मधुसूदन सरस्वती ने गीता पर अपने 'गूढार्थ दीपिका' नामक टीका में उन गुणों की व्याख्या के सन्दर्भ में चतुर्वर्णाश्रम धर्म को प्रस्तुत किया है। इन गुणों को जानने से पता चलता है कि भगवान श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने जीवन और वाणी में सम्यक् अभिव्यक्ति दी। इस सन्दर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि उनके जीवन और वाणी में सभी दैवी सम्पदाएँ समाहित हैं और वे स्वयं उनका शाश्वत स्वरूप हैं। इसलिये स्वामीजी के शब्दों का अनुसरण करते हुए हम इस लेख में अत्यन्त संक्षेप में यह देखेंगे कि इस श्रीरामकृष्ण युग में श्रीरामकृष्ण के माध्यम से इन दिव्य संसाधनों का अपने जीवन में कैसे आचरण कर सकते हैं। गीता (१६.१-३) में श्रीकृष्ण दैवी सम्पद का लक्षण कहते हैं –

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायः तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधः त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेषु अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीं अभिजातस्य भारत।।

१. अभय – यहाँ अभय केवल निर्भयता को ही व्यक्त नहीं करता है। यहाँ अभय शब्द का अर्थ व्यर्थ शंकाओं को त्यागकर, शास्त्रों में बताई गई बातों के अभ्यास में सक्रिय रहना है। 'मैं बिना किसी की सहायता के अपना जीवन कैसे व्यतीत कर सकता हूँ और अकेले ईश्वर की शरण में कैसे जा सकता हूँ?' ऐसी शंका से मुक्त होना भी अभय का अर्थ है। पुनः अभय का अर्थ सभी प्राणियों को शरण देने का संकल्प है। संन्यास लेते समय 'अभयं सर्वभूतेभ्यः' इत्यादि सर्वभूत को अभय दान का संकल्प और निर्भयता का आश्वासन है।

श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में सभी प्राणियों को अभय प्रदान किया था। इसलिये साधना-काल में पंचवटी आदि अन्य घने जंगलों के प्राणियों से उन्हें कोई भय नहीं था, न ही कोई प्राणी उनसे डरते थे।

२. सत्त्वसंशुद्धिः – हृदय की शुद्धि अर्थात् पवित्रता या सभ्यता की पराकाष्ठा और ज्ञान की योग्यता सत्त्वसंशुद्धि है। मिथ्या प्रदर्शन और मिथ्या भाषण न करना सत्त्वसंशुद्धि है। आत्मनिरीक्षण की परिपक्वता से आत्मसमीक्षा, असम्भावना, विपरीत सोच की शंका और प्रकृति में विद्यमान दोषों का अभाव और मिथ्या जानकारी का अभाव सच्ची रूप से संशुद्धि है।

इसलिये, साधना-काल में श्रीरामकृष्ण ने कंगालियों का जूठन भोजन किया, मेहतर के शौचालय की सफाई आदि सेवा कर अपनी चित्तशुद्धि की पराकाष्ठा दिखायी। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ''यदि अपने को पहले शुद्ध कर लिया जाये, तो भगवान अन्त में आकर पवित्र आसन पर बैठेंगे। चित्तशुद्धि के बाद भक्ति मिलने से उनकी कृपा से दर्शन मिलते हैं। चित्तशुद्धि नहीं होने से भगवान के दर्शन नहीं होते। काम, क्रोध, लोभ इन सब चीजों पर विजय पाने से उनकी कृपा होती है, तब भगवान के दर्शन होते हैं। मन शुद्ध हो जाए, विषयासक्ति समाप्त हो जाए, तब तुम्हारी प्रार्थनाएँ भगवान तक पहुँचेंगी।'' पहले मन को शुद्ध करें, फिर मन को भगवान का चिन्तन करने दें, तब वह उनके रंग में रम जाएगा। यदि मन को निष्काम कर्म से शुद्ध किया जाए, तो भक्ति आएगी, भक्ति से भगवान प्राप्त होंगे। यदि दर्पण गन्दा हो, तो उसको स्वच्छ किये बिना चेहरा नहीं देखा जा सकता, सम्पूर्ण रूप से नहीं देखा जा सकता, वेदान्त कहता है कि शुद्ध बुद्धि के बिना कोई भगवान को जान नहीं सकता।

३. ज्ञानयोगव्यवस्थितिः – शास्त्रानुसार आत्मस्वरूप

अर्थात् सत्ता की साक्षात् अनुभूति को ज्ञान कहा जाता है। मन की एकाग्रता से आत्मानुभूति को योग कहा जाता है। ज्ञान का तात्पर्य आत्म-साक्षात्कार और योग शब्द का अर्थ मन का निरोध है। श्रीरामकृष्ण ने ज्ञान के उन्मेष में जगज्जननी के श्रीचरणों में अपना सब कुछ समर्पित कर दिया और मन को दिशा-सूचक यन्त्र के काँटे की भाँति हमेशा भगवान के श्रीचरणों में, एक ही दिशा में रखा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ज्ञान क्या है? और मैं कौन हूँ? ईश्वर ही कर्ता और सब अकर्ता यह जानना ही ज्ञान है। ज्ञान के दो लक्षण हैं प्रथम कुटस्थ बुद्धि, द्वितीय पुरुषार्थ। जब तक यह अनुभव होता है कि ईश्वर वहाँ है, तब तक अज्ञान है। जब यह अनुभव होता है कि ईश्वर यहाँ है, तब उसे ज्ञान कहते हैं। कुटस्थ बुद्धि के दो लक्षण हैं – प्रथम कोई अहंकार न हो, दूसरा शान्त स्वभाव हो। यदि मन स्थिर नहीं है, तो योग नहीं है। मन शुद्ध होने से योग होता है। हवा के बिना दीप-शिखा जैसे मन का स्थिर होना योग की अवस्था है।

४. दानम् – किसी वस्तु में अपने अधिकार का परित्याग करके दूसरे के अधिकार को उत्पन्न करना शास्त्रों में दान कहा गया है। अपने जीवन के अन्त में दान की सर्वोच्च पराकाष्ठा दिखाते हुए श्रीरामकृष्ण ने अपना आध्यात्मिक ज्ञान का भंडार नरेन्द्रनाथ को दे दिया।

अनेक लोग अधिकांश दान सकाम भाव से करते हैं, जो श्रेष्ठ दान है, किन्तु निष्काम भाव से प्रदत्त दान सर्वश्रेष्ठ है। यदि कोई व्यक्ति संकटग्रस्त हो और आपके पास धन हो, तो उसे पैसे आदि देकर सहायता करनी चाहिए। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''यदि गृहस्थ निष्काम भाव से किसी को दान देता है, तो वह उसके अपने ही उपकार के लिये होता है, परोपकार के लिये नहीं। सर्व भूतों में हरि विद्यमान हैं, उन्हीं की सेवा होती है, हरि-सेवा होने से अपना ही उपकार हुआ, परोपकार नहीं।'' जिनके पास पैसा है, उन्हें दान करना चाहिए। जो दान-ध्यान करता है, उसे चतुर्वर्ग-फल प्राप्त होता है।

५. दम – दम का अर्थ है सभी बाह्य इन्द्रियों का संयम। जैसे गृहस्थ-जीवन में ऋतुकाल को छोड़कर मैथुन आदि से विरत होना। संन्यासाश्रम में सब प्रकार से संयम है। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण दीर्घ काल तक अपनी पत्नी के साथ एक ही बिस्तर पर रहकर भी सुसंयमित रहे। उन्होंने इन्द्रिय-संयम के संघर्ष की परीक्षा स्वयं ली और उत्तीर्ण हुये। साधना-काल में भी उन्होंने भैरवी ब्राह्मणी के संरक्षण में तंत्र-साधना की तथा आनन्द आसन में संयमित होकर सिद्धि प्राप्त की। भगवान के प्रति जितना अधिक प्रेम होगा, उतना ही इन्द्रिय-सुख दुर्बल होने लगेगा और उसे कोई सुख की इच्छा नहीं होगी।

६. यज्ञ – मनु आदि स्मृतिशास्त्र में चार प्रकार के यज्ञ का उल्लेख है, जैसे देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ और मनुष्य यज्ञ। ब्रह्म यज्ञ का उल्लेख स्वाध्याय के प्रसंग में अलग से किया गया है, इसलिये यहाँ उसे नहीं जोड़ा गया है। दान, दम और यज्ञ गृहस्थों के लिए विशेष धर्म के रूप में निर्धारित किया गया हैं। श्रीरामकृष्ण ने संन्यास लेने के पश्चात् भी मातृऋण को स्वीकार कर अपनी माता की जीवनभर सेवा-शुश्रूषा की तथा उनकी मृत्यु पर शोकमग्न भी हुये।

७. स्वाध्याय – स्वाध्याय ब्रह्म-यज्ञ है। यह ब्रह्मचर्य आश्रम का विशेष अर्थात् असाधारण धर्म है। आत्म-विचार करना भी स्वाध्याय है। श्रीरामकृष्ण ने औपचारिक रूप से शिक्षित नहीं होने पर भी दूसरे साधु-संन्यासियों से शास्त्र की बातें सुनकर उसका अभ्यास किया था। वे बाल्य काल से आत्ममन्थन कर इस निष्कर्ष में पहुँचे कि स्वाध्याय का मूल उद्देश्य आत्मज्ञान होना चाहिए, केवल धनार्जन नहीं।

८. तप – तप तन-मन-वाणी से तीन प्रकार का होता है। यह वानप्रस्थ आश्रम का विशेष धर्म है। रामकृष्ण ने १२ वर्षों तक घोर कठिन साधना की और जीवन के अन्त तक तन-मन-वाणी की तीव्र तपस्या में रत रहे, जो अद्भुत है। वे कहते हैं – कुछ दिन एकान्त में तपस्या करनी चाहिए, तभी तो ज्ञान मिलेगा, फिर जाकर संसार करो। एक दिन, एक महीना, तीन महीने, एक वर्ष, जैसा सम्भव हो करो। वेद आदि बहुत से ग्रन्थ हैं, परन्तु यदि आप साधना नहीं करेंगे, तो भगवान नहीं मिलेंगे। केवल पाण्डित्य से क्या होगा? कुछ तपश्चर्या की, कुछ साधना की आवश्यकता है। उन्हें प्राप्त करने के लिए कुछ संस्कार की आवश्यकता है, इस जन्म में हो या पिछले जन्म में तपस्या करना आवश्यक है। साधना और तपस्या चाहिए। केवल सिद्धि (भांग) बोलने से नशा नहीं होगा, कुछ न कुछ खाना भी पड़ेगा।

९. आर्जवम् – आर्जवम् अर्थात् अवक्रता। आर्जव का अर्थ है सरलता। यानी कपट ना होना। श्रीरामकृष्ण के जीवन में सदा सर्वदा एक पाँच वर्ष के बच्चे की जैसी निश्छल

सरलता की मधुरता विद्यमान रहती थी। सरलता के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ईश्वर सरलता से शीघ्र ही मिल जाते हैं। भगवान को मत भूलो और सरल मन से उन्हें पुकारो, वे प्रकट हो जायेंगे। यदि किसी ने पिछले जन्मों में बहुत अधिक तपस्या न की हो, तो सरलता नहीं होती। देखो दशरथ कितने सरल थे, नन्द श्रीकृष्ण के पिता कितने सरल थे। यदि सरल है, तो ईश्वर आसानी से मिल जाते हैं। यदि सरल है, तो उपदेश का शीघ्र प्रभाव पड़ता है। सरल नहीं होने पर भगवान की कृपा नहीं मिलती। उदार नहीं होने से भगवान नहीं मिलते। कपट होने से भगवान बहुत दूर रहते हैं। नन्द घोष, वसुदेव आदि कितने सरल थे। अन्तिम जन्म या अधिक तपस्या के बिना उदारता, सरलता नहीं आती।

१०. अहिंसा – तन-मन-वाणी से किसी को कष्ट न देना अहिंसा है। एक बार श्रीरामकृष्ण का कर्मचारियों ने अपमान किया, किसी ने मार दिया, लेकिन अहिंसा में प्रतिष्ठित उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की।

११. सत्य – जिससे किसी निर्दोष व्यक्ति को हानि न हो, ऐसे यथार्थ वचन बोलने का नाम सत्य है। श्रीरामकृष्ण ने अपने साधन-काल में एक सत्य को छोड़कर सब कुछ जगत-जननी को समर्पित कर दिया। क्योंकि सत्य त्याग देने से उनके द्वारा श्रीमाँ के चरणों में समर्पण का सत्य भी संरक्षित कैसे रहेगा। वे कहते हैं – सत्य का पालन करोगे, तो भगवान मिलेंगे। सत्य बोलना कलि की तपस्या है। कलि में अन्य तपस्या कठिन है, सत्य में रहने से भगवान मिल जाते हैं। तुलसीदास ने भी कहा है 'सत्य से हरि ना मिले तो तुलसी झूठ जबान'।

१२. अक्रोधः – किसी के द्वारा संत्रस्त होने पर जब क्रोध उत्पन्न होता है, तब क्रोधित न होने को अक्रोध कहते हैं। श्रीरामकृष्ण ने अपने सेवक हृदय आदि की कठोर बातों को बिना किसी क्रोध, क्षोभ के सहजता से साथ सहन किया।

१३. त्यागः – त्याग शब्द का अर्थ है प्राप्त वस्तुओं का त्याग या उनकी इच्छा न करना। संन्यास भी त्याग शब्द का दूसरा अर्थ है। त्याग ही श्रीरामकृष्ण के जीवन का मूल स्वर है। उन्होंने फलहारिणी काली पूजा के दिन श्रीमाँ सारदा देवी की षोडशी पूजा कर जीवन भर की साधना का फल उन्हें समर्पित कर दिया। वे कहते थे – काम-कांचन-त्याग ही सच्चा त्याग है।

यदि आपने एक दूसरे के ऊपर रखी दो वस्तुएँ देखी हैं, तो पहली वस्तु को नहीं हटाने से आप दूसरी को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। त्याग के बिना भगवान नहीं मिलते। त्याग से ही अज्ञान का नाश होता है। त्याग आवश्यक है।

१४. शान्तिः – यहाँ शान्ति शब्द का तात्पर्य अन्त:करण – चित्त की चंचलता का उपशम है। श्रीरामकृष्ण अद्वैत साधना के गुरु तोतापुरी जी से समाधि के लिए चित्त-उपशम की प्रणाली ज्ञात कर मन:संयम के द्वारा विक्षेप को नियन्त्रित कर सत्वर समाधि में प्रतिष्ठित हो गये। वे कहते हैं, भक्ति-मार्ग से अन्तरिन्द्रिय-संयम सहजता से हो जाता है।

१५. अपैशुनम् – दूसरे के दोष को उसकी अनुपस्थिति में न कहना, यानी परनिन्दा न करना ही अपैशुन कहलाता है। श्रीरामकृष्ण ने आजीवन दूसरों की गलती न देखकर दूसरों को आगे बढ़ने का मार्ग दिखाया। इस प्रसंग में उन्होंने 'आगे बढ़ो' की कहानी भी सुनाई थी।

१६. दयाभूतेषु – दुखी या पीड़ित प्राणियों के प्रति करुणा ही दया है। श्रीरामकृष्ण देव मानवता के प्रति माता की भाँति दयालु थे। उन्होंने दया के प्रति अपना चैतन्यदायी उद्‌गार व्यक्त करते हुये कहा था – दया सभी प्राणियों में प्रेम है। यदि तुम किसी में दया देखते हैं, तो यह जानो की वह दया ईश्वर की ही दया है। दया से सभी प्राणियों की सेवा होती है। दयालुता से चित्त का शुद्धिकरण होता है। सभी राष्ट्रों के लोगों को प्रेम, सभी धर्मों के लोगों के प्रति प्रेम, यह दया से ही होता है। दयालुता से भगवान प्राप्त होते हैं। शुकदेव, नारद आदि दयालु थे। जिसमें दया नही है, वह मनुष्य कहने के योग्य नहीं है। दयालु के अन्दर जो दया देखोगे, जीव की रक्षा हेतु ईश्वर ने स्वयं अपनी दया उसे देकर रखा है।

१७. अलोलुप्त्वम् – विषय के निकट रहने पर भी इन्द्रियों की निर्विकारता तथा लोभशून्यता को अलोलुपता कहते हैं। श्रीरामकृष्ण के जीवन में स्वभावत: अलोलुपता थी। मथुर बाबू के द्वारा ली गयी लोभ की परीक्षा में वे सहजता से उत्तीर्ण हुए थे। श्री लक्ष्मी नारायण के १०,००० रुपए का दान भी उन्होंने सहजता से अस्वीकार कर दिया था।

१८. मार्दवम् – मृदुता सज्जनता की पहचान है। दूसरे के द्वारा कठोर बोलने पर भी अनुद्विग्न हुये बिना मधुरता से अपनी बात कहना मृदुता है। नरेन्द्रनाथ आदि शिष्यों के

द्वारा कभी-कभी श्रीरामकृष्ण को कठोर शब्द कहने पर भी वे स्वाभाविक माधुर्य भाव से ही व्यवहार करते थे।

१९. ह्रीः – किसी अनुचित आचरण के कारण हुई मन की संकोचपूर्ण अवस्था को लज्जा या ह्री कहते हैं। लज्जा नारियों का भूषण भी है। श्रीरामकृष्ण के जीवन में कभी पाँच वर्ष बालक जैसी लज्जा भी देखने को मिलती थी।

२०. अचापलम् – वाक् आदि कर्मेन्द्रियों, हाथ, पैर आदि अंगों में अनावश्यक चंचलता का न होना अचपलता है। आर्जव से लेकर अचपलता तक ये ब्राह्मणों के विशिष्ट धर्म हैं। श्रीरामकृष्ण के जीवन ने ध्यान और समाधि के द्वारा अपने अचल स्वरूप को जगत के समक्ष प्रस्तुत किया।

२१. तेजः – किसी अन्याय या अधर्म के प्रति असहिष्णुता और दूसरों के विक्रम से अभिभूत न होना भी तेज कहलाता है। श्रीरामकृष्ण ने गौरी पंडित की सिद्धाई पर 'रे रे' कहते हुए उनकी शक्ति से प्रभावित न होकर उनके कल्याणार्थ उनकी शक्ति का हरण कर लिया था।

२२. क्षमा – शक्ति और सामर्थ्य रहते हुये भी दूसरों की त्रुटियों के प्रति क्रोध न करना और उसके दोषों की उपेक्षा कर देना क्षमा कहलाता है। श्रीरामकृष्ण सदैव क्षमाशील रहे। उन्होंने असंख्य बार दूसरों की गलतियों को क्षमा किया और उन लोगों को सन्मार्ग पर अग्रसर किया।

२३. धृतिः – यहाँ धृति या धैर्य का तात्पर्य इन्द्रियों को क्रियाशील और सतेज बनाए रखने के लिये शारीरिक बल तथा सामर्थ्य से है। अर्थात् निराशा से मुक्त होने के लिए जो प्रयत्न किया जाये, जिससे शारीरिक क्रियाशीलता जारी रहे, वही यहाँ धृति है। तेज, क्षमा और धृति; ये तीनों क्षत्रियों के विशेष धर्म हैं। साधना-काल में श्रीरामकृष्ण कभी प्रमादी और हताश नहीं हुये। वे धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहे और विभिन्न धर्मों की साधना कर उनमें सिद्धि प्राप्त की।

२४. शौचम् – शौच का अर्थ पवित्रता है। कपटता और मिथ्या भाषण से मुक्त होकर हृदय की पवित्रता को शौच कहते हैं। शुचिता और पवित्रता श्रीरामकृष्ण के जीवन के अभिन्न अंग थे। उन्होंने अपने जीवन में कभी असत्य नहीं बोला। सत्य हेतु उन्होंने मन-मुख की एकता का उपदेश दिया। वे कहते हैं, जो लोग ऑफिस का काम करते हैं या व्यवसाय करते हैं, उन्हें भी सत्य में रहना चाहिए, सत्य वचन कलि की तपस्या है। व्यापारियों को सत्यवादी होना चाहिये, कपटी नहीं। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'केशव-केशव, गोपाल-गोपाल' की कहानी भी सुनाई थी। वे कहते हैं, यदि तुम सत्य का पालन करो, तो उस सत्य के बल पर भगवान को उनकी इच्छा से प्राप्त किया जा सकता है।

२५. अद्रोहः – किसी के प्रति वैर-भाव न रखने को अद्रोह कहते हैं। शौच एवं अद्रोह दोनों विशेष धर्म हैं। परम कृपालु श्रीरामकृष्ण का सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव था, किसी से वैर नहीं था।

२६. नातिमानिता – अभिमान का अभाव नातिमानिता है। लोकमानस में सम्मान-प्राप्ति की अनिच्छा और दूसरों को सम्मान प्रदान करने की भावना है। श्रीरामकृष्ण अपने बारे में कहते थे, 'मैं रेणु का रेणु हूँ', अर्थात् मैं सबसे छोटा हूँ। उनमें कोई अभिमान नहीं था। वे कहते थे, अहंकार होने से ईश्वर की कृपा नहीं होती है। अहंकार रूपी ऊँचाई पर भगवान की कृपा रूपी जल जमा नहीं होता है। अहंकार अज्ञान से होता है। अज्ञान से लोग अपने को कर्ता समझते हैं कि मैं ही मालिक हूँ। जीव का यह अहंकार ही माया है, इस अहंकार ने सब कुछ ढककर रखा है। अहंकार का पूर्णतः त्याग करना चाहिए। किन्तु मैं उनका दास हूँ, मैं उनका बच्चा हूँ, मैं उनका भक्त हूँ, ऐसा अहंकार बहुत अच्छा है। जब तक अहंकार है, तब तक अज्ञान है और अज्ञान के रहते मुक्ति नहीं हो सकती।

अभिमान को त्यागना बहुत कठिन है, छोड़ने से भी कहीं से फिर आ जाता है। अगर गर्व करना है, तो विभीषण की तरह करो – मैं राम को नमन करता हूँ, मैं यह सिर किसी और के सामने नहीं झुकाऊँगा ऐसे। परन्तु मैं मुक्त हूँ, यह अभिमान बहुत अच्छा है। ऐसा सोचने से अन्त में सचमुच वह मुक्त हो जाता है। भगवान किसी-किसी के अहंकार को पूरी तरह से मिटा देते हैं, वे पाप-पुण्य, अच्छाई और बुराई से परे हो जाते हैं। मैं विद्वान हूँ, मैं अमुक का बेटा हूँ, मैं धनी हूँ, इत्यादि अहंकार की उपाधि का त्याग हो जाए, तो भगवान का दर्शन मिलता है। मैं इतना महान व्यक्ति हूँ, मैं इतना धनी हूँ, इन सारे अभिमानों को छोड़े बिना ईश्वर नहीं मिल सकते। यदि अहंकार करना है, तो मैं ईश्वर का सेवक हूँ, ईश्वर की संतान हूँ, ऐसा अहंकार करो।

शेष भाग पृष्ठ १२० पर

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस विशेष

वैदिक नारी अपाला

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, आज हम ऋग्वेद में वर्णित महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला की रोचक और अनसुनी कहानी देखेंगे। प्राचीन काल में अत्रि नामक एक ऋषि थे। आपने सुना होगा, रामायण काल में भगवान श्रीराम वनवास काल में जिन-जिन ऋषियों और मुनियों के आश्रम गये थे, उनमें महर्षि अत्रि भी एक थे।

परमज्ञानी अत्रि ऋषि की पुत्री थीं अपाला। वे महान विदुषी एवं असाधारण प्रतिभा की स्वामिनी थीं। पिता के आश्रम में दूर-दूर से विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे और सम्पूर्ण वेद-वेदांगों में पारंगत होकर वापस जाते थे। ऋषि अपने शिष्यों से पुत्रवत स्नेह करते थे। नया पाठ पढ़ाने से पहले ऋषि पुराना पाठ सुनते थे। एक दिन जब महर्षि शिष्यों को पढ़ा रहे थे, तब उसी पाठ का गायन मधुर स्वर में गूँजने लगा। महर्षि चकित हो गये कि सारे शिष्य यहाँ बैठे हैं। पीछे से किसकी आवाज आ रही है। महर्षि ने कक्षा छोड़ बाहर जाकर देखा, तो उन्होंने पौधों व लताओं को सींचते हुए अपनी कन्या अपाला को मधुर स्वर में वेद की ऋचाओं का गायन करते हुये सुना।

जब अपाला ने पिता को देखा, तो घबरा गयी। ऋषि के यह पूछने पर कि यह ऋचा उसने कहाँ से सीखी? उन्होंने उत्तर दिया – पिताजी, आप जब शिष्यों को पढ़ाते हैं, तो उन्हें मैं सुन-सुनकर ही याद कर लेती हूँ। महर्षि अत्रि अपनी नन्हीं अपाला का शुद्ध उच्चारण, शब्दों पर उसकी सही पकड़ और मधुर स्वर देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि उनकी पुत्री विलक्षण प्रतिभा की धनी है। उसके बाद उन्होंने अपाला को विधिवत् वेद पढ़ाया।

लेकिन ऋषि पुत्री अपाला भाग्य की धनी नहीं थीं। उनके शरीर पर सफेद दाग थे। त्वचा रोग से ग्रस्त होने के कारण महर्षि बहुत दुखी व चिन्तित रहते थे। ऋषि ने अपाला को उच्चस्तरीय ब्रह्मज्ञान देकर उनकी प्रतिभाओं को और निखारा। एक दिन वेदों के ज्ञाता विद्वान कृशाश्व महर्षि अत्रि के आश्रम में अतिथि रूप में आए। अपाला के सौन्दर्य और व्यवहार कुशलता से मुग्ध होकर उन्होंने उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। महर्षि अत्रि ने अपाला का विवाह कृशाश्व के साथ कर दिया।

वे पति के आश्रम में चली गईं। एक दिन सफेद चकत्तों पर कृशाश्व की दृष्टि पड़ गई। वह अपाला को तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। पति से अपमानित होकर वह पिता के आश्रम में वापस आ गईं।

ऋषि अत्रि ने रोग के निदान के लिए अपाला से भगवान इन्द्र की उपासना करने को कहा। इन्द्र की उपासना करते हुए उन्होंने देवराज इन्द्र के प्रशस्ति मंत्रों की रचना की। वे मन्त्रों का जप करके सोमरस* का नैवेद्य चढ़ाया करती थीं। अपाला के प्रेम और भक्ति से खुश होकर इन्द्र प्रकट हुए, अपाला ने सोम की बेल को दाँतों से दबाकर उसका रस निकालकर उन्हें पिलाया। प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र ने कहा ''अपाले ! तुम धन्य हो ! तुम्हारा रोग दूर हो जाएगा।'' इन्द्र के वरदान से अपाला रोगमुक्त हो गईं। उनका शरीर स्वर्ण के समान चमकीला हो गया और वह अपने प्रेम और निष्ठा के फलस्वरूप अमर हो गयीं। उसके कुछ दिन पश्चात् उनके पति कृशाश्व को अपनी गलती का बोध हुआ। उन्होंने अपाला के पास आकर क्षमा याचना की। वे मान गईं और दोनों पुन: अपने दाम्पत्य जीवन में प्रसन्न रहने लगे।

तो बच्चो, अपाला की यह कहानी जो गुण और सुन्दरता के बीच के मतभेद को महत्त्व प्रदान करती है, आपको कैसी लगी। आशा है, आपने भी यह सीखा होगा कि शारीरिक सुन्दरता तो क्षणिक मात्र है, सच्ची पहचान तो गुणों से होती है, जो सदा के लिए होता है।

* सोमरस – ऋग्वेद में वर्णित सोमरस, सोम नाम के पौधे की पत्तियों को पीसकर बनाया जानेवाला रस था। यह आर्यों का प्रमुख पेय था। यह जड़ीबूटी है। ○○○

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस विशेष

स्वामी विवेकानन्द के विचारों के आलोक में नारी सशक्तिकरण

नम्रता वर्मा

पी.आई.बी. विभाग, दिल्ली

''सभी राष्ट्र नारियों को उचित सम्मान देकर महान बने हैं। जो देश और जाति नारियों का सम्मान नहीं करती, वह कभी महान नहीं हुई, न भविष्य में होगी।'' नारियों के प्रति यह उद्‌गार उन्नीसवीं सदी के प्रमुख भारतीय चिन्तक स्वामी विवेकानन्द के हैं। नारियाँ परिवार, समाज एवं राष्ट्र की धुरी हैं। वे ही राष्ट्रनिर्मात्री होती हैं। स्वामीजी के लिए नारियों को अज्ञानता एवं दासता की बेड़ियों में जकड़े देखना दुसह्य था। नारी-जागरण के लिए उन्होंने महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। इस सन्दर्भ में उन्होंने नारियों से शिक्षित, सशक्त एवं स्वावलम्बी होने का आह्वान किया। स्वामीजी के चिन्तन में ऐसे अनेक सूत्र विद्यमान हैं, जिनसे नारी-जाति के उन्नयन एवं उनकी समस्याओं के समाधान का मार्ग मिलता है। नारियों से सम्बन्धित विविध विषयों पर स्वामीजी ने विस्तार से विचार किया है। भारतीय नारी मैत्री, गार्गी, अपाला जैसी तेजस्विनी हो, यह उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी। आज हम चतुर्दिक क्षेत्रों में महिलाओं को नई राह गढ़ते देख रहे हैं। इनके मूल में स्वामी विवेकानन्द जैसे युगाचार्य की सम्यक् प्रेरणा है।

नारी-शिक्षा के प्रबल समर्थक

स्वामी विवेकानन्द नारी-शिक्षा के प्रबल पक्षधर रहे। स्वामीजी से किसी ने प्रश्न किया नारियों की उन्नति का मार्ग क्या है?

स्वामीजी ने कहा – नारियों को शिक्षित कर देना होगा, तब वे स्वयं ही अपनी मुक्ति का मार्ग ढूँढ लेंगी, अपनी समस्याओं का समाधान कर लेंगी।

स्वामीजी की प्रेरणा से ही उनकी सुयोग्य शिष्या भगिनी निवेदिता ने भारतवासियों के सेवार्थ अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। भारतीय नारी-समाज के मध्य कार्य करना निवेदिता का ध्येय था। बालिकाओं को शिक्षित करने के उद्देश्य से भगिनी निवेदिता ने वर्ष १८९८ में बागबाजार कोलकाता में बालिका विद्यालय की स्थापना की। स्वामीजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य जीवन के सभी क्षेत्रों एवं कार्यों में अन्तर्निहित दिव्यता का प्रकटीकरण है। भगिनी निवेदिता ने स्वामीजी के इस मतानुसार शैक्षिक पाठ्यक्रम निर्धारित किया, जिससे बालिकाओं का चतुर्विध उन्नयन सुनिश्चित हो।

गौरवशाली राष्ट्रीय इतिहास से परिचित पीढ़ी ही सुदृढ़ भवितव्य की निर्मात्री होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में स्वामीजी जैसे स्वप्नदर्शियों के इन्हीं विचारों का समावेश है। इससे आशा बँधी है कि बालिकाओं एवं बालकों में मातृभूमि, मातृभाषा के प्रति आदर का भाव जागृत होगा। कौशल विकास के साथ चरित्र-उन्नयन की राह प्रशस्त हो सकेगी। आवश्यकता है कि नीति का समुचित क्रियान्वयन हो।

आध्यात्मिकता एवं नारी

स्वामी विवेकानन्द भली-भाँति जानते थे कि भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का अधिकार जीव मात्र को है। इसमें जाति-वर्ण-लिंग-भाषा-रूप बाधक नहीं हो सकते। स्वामीजी का स्वप्न था कि श्रीमाँ सारदा को प्रेरणा-केन्द्र के रूप में रखकर आत्मानुसन्धान एवं ईश्वरानुभूति हेतु लालायित महिलाओं के लिए महिला-मठ की स्थापना हो। स्वामीजी की महासमाधि के पश्चात् वर्ष १९५४ में सारदा मठ की स्थापना हुई। मठ का सम्पूर्ण संचालन संन्यासिनियों द्वारा ही होता है। आज भारत भर में सारदा मठ के ३३ केन्द्र एवं २

अन्तर्राष्ट्रीय केन्द आस्ट्रेलिया और श्रीलंका में संचालित हैं। श्रीमाँ को केन्द्र में रखकर मठ की संन्यासिनी माताएँ विभिन्न लोकोपकारी शैक्षणिक प्रकल्प संचालित करती हैं, तो वहीं दत्तचित्त होकर आध्यात्मिक मार्ग की ओर भी अग्रसर हैं एवं अन्यान्य गृहस्थ नारियों को दायित्वों का निर्वहण करते हुए साधन-भजन कर ईश्वरानुभूति हेतु प्रेरित करती हैं।

नारीत्व का आदर्श माँ

भारत में नारीत्व का सर्वोच्च आदर्श माँ है। भारत में मातृजाति के प्रति अपार श्रद्धा है। स्वामी विवेकानन्द जी भी मातृत्व के आदर्श को प्रधान मानते थे। स्वामीजी के विचारों में ''भारत में माँ परिवार का केन्द्र और हमारा सर्वोच्च आदर्श है। वह हमारे लिए ईश्वर की प्रतिनिधि है।'' त्याग, ममत्व एवं नि:स्वार्थता से लालन-पालन करनेवाली सच्चरित्र माताएँ ही संतान को संस्कारित कर सकती हैं। वस्तुत: तेजी से बदलते इस युग में मातृत्व की इस धारा को ही संपोषित करने की आवश्यकता है। स्वामीजी ने मातृत्व का जो आदर्श सम्मुख रखा है, उसकी विस्मृति ही अनेक कुसंस्कारों की उत्पत्ति का कारण हैं। महिलाओं के प्रति अपराध, हिंसा एवं दुराचार की घटनाएँ तथा पथभ्रान्त होते समाज को स्वामी विवेकानन्द की ओर पुन:-पुन: वापस आने की आवश्यकता है।

समाधान का मार्ग बताते स्वामी विवेकानन्द

नारियों से जुड़ी समस्याओं के समाधान पर स्वामीजी का विचार था कि शिक्षित महिलाएँ अपनी उन्नति का मार्ग स्वयं खोज लेंगी। तत्कालीन समय में बाल विवाह के प्रति स्वामाजी ने अप्रसन्नता व्यक्त की थी। स्वामीजी कहते थे, ''कम उम्र में बालिकाओं का विवाह करने से प्रसव के दौरान उनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसी माताओं से जन्मी सन्तानें भी रोगी एवं दुर्बल होती हैं।'' उन्होंने बाल विवाह जैसी कुरीति के प्रति लोगों को सचेत किया। महिला-पुरुष में भेदभाव भी उन्हें स्वीकार नहीं था। स्वामीजी कहते थे, ''यह समझना बहुत कठिन है कि इस देश में महिला-पुरुष में इतना भेद क्यों किया जाता है, जबकि वेदान्त कहता है कि सभी प्राणियों में एक ही चेतन आत्मा विद्यमान है। आप हमेशा महिलाओं की आलोचना करते हैं, लेकिन यह बताइए कि आपने उनके उत्थान के लिए क्या किया है?'' स्वामीजी अमेरिकी महिलाओं की उदारता, बुद्धिमत्ता एवं परिश्रमी स्वभाव के प्रशंसक थे। अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन महिलाओं को देखकर उनकी आकांक्षा होती थी कि भारतीय महिलाएँ भी इसी तरह जीवन के विविध क्षेत्रों में अपने गुण से विशेष स्थान बनाएँ।

प्रेरणापुंज विवेकानन्द

स्वामीजी के विराट व्यक्तित्व ने सभी को प्रेरित किया है। जीवन की विकट परिस्थितियों से जूझती महिलाओं को स्वामीजी के संदेशों से धीरज एवं बल मिला है। कृत्रिम पैर के सहारे माउण्ट एवरेस्ट पर तिरंगा लहरानेवाली विश्व की पहली दिव्यांग महिला अरुणिमा सिन्हा कहती हैं ''स्वामी विवेकानन्द मेरे प्रेरणा स्रोत हैं। कठिन परिस्थितियों से लड़ने की प्रेरणा मुझे स्वामीजी से मिली।'' रेल हादसे में पैर गँवाने के बाद अरुणिमा के जीवन में गहन अन्धकार व्याप्त हो गया था। स्वामीजी के प्रेरणापुंज रूपी संदेशों ने अरुणिमा को जीवन-संग्राम में उतरने का साहस दिया। विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी की मुख्य संचालिका सुश्री निवेदिता रघुनाथ भिड़े के मानस पटल पर स्वामीजी के विचारों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन महिला ने सेवा को ही जीवन का मुख्य ध्येय बना लिया।

कार्यक्षेत्र में बढ़ रही महिलाओं की भागीदारी

स्वामी विवेकानन्द ने महिला-पुरुष सबके लिए आत्मनिर्भरता को आवश्यक माना था। शिक्षा के उपरान्त रोजगार, स्वरोजगार से जुड़कर ही महिलाएँ आत्मनिर्भर हो सकती हैं। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाएँ वैयक्तिक एवं सामाजिक मोर्चे पर भी निर्णय लेने में समर्थ हुई हैं। आँकड़े बताते हैं कि भारत में ३७% महिलाएँ सक्रिय रूप में कार्य कर रही हैं। व्यापार-उद्योग में भारतीय महिलाओं की भागीदारी लगभग २४% है। वहीं, खेल क्षेत्र में २७% तथा भारतीय संसद में लगभग १४% महिलाएँ प्रतिनिधित्व कर रही हैं। शारीरिक सीमाओं की बेड़ियों को तोड़ते हुए उत्कृष्ट प्रशिक्षण के साथ कुल ११% महिलाएँ भारतीय वायुसेना में पायलट के रूप में कार्य कर रही हैं। भारत के शीर्ष पदों में भी महिलाएँ सम्मिलित हैं। भारतीय कंपनियों में ३.७% महिलाएँ सीईओ हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ भी पीछे नहीं हैं। कृषि क्षेत्र में कुल ८७% ग्रामीण महिलाएँ भागीदार हैं। आज कार्यक्षेत्र में महिलाओं की सशक्त उपस्थिति है। भारत में भी महिलाओं की कार्यबल, भागीदारी दर में वृद्धि हुई है। वे रक्षा, खेल, उद्योग एवं व्यापार समेत विविध क्षेत्रों में अपने कौशल का परिचय दे रही हैं।

सेवा के क्षेत्र में भी महिलाएँ अग्रसर हैं। बहुत-सी महिलायें विभिन्न सेवा-संस्थानों का संचालन कर जनता की सेवा कर रही हैं। जिस प्रकार रामकृष्ण मिशन आध्यात्मिक संगठन संन्यासियों द्वारा संचालित है, उसी प्रकार सारदा मिशन आध्यात्मिक संगठन भी संन्यासिनी माताजी लोग संचालित कर रही हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी मातायें जन-सेवा करती हुई आध्यात्मिक जीवन-यापन कर रही हैं। ऐसी ही एक महीयसी नारी हैं प्रव्राजिका विशुद्धानन्दा माताजी, जो नर्मदा के पास मध्यप्रदेश के सुदूर ग्रामांचल में नीमार अभ्युदय प्रकल्प, नर्मदालय, रामकृष्ण सारदा निकेतन का संचालन कर रही हैं, जिनके विद्यालय में ३००० बच्चे नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उनके छात्रावास के बच्चे विभिन्न कौशल क्षेत्रों में भी अग्रसर हैं और कई राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके हैं।

यद्यपि महिलाओं की भागीदारी दर में वृद्धि तो हुई है, लेकिन यह अभी भी विश्व के अन्य देशों की तुलना में कम है। महिलाओं की भागीदारी में अभिवृद्धि हेतु केन्द्र सरकार, निजी क्षेत्र एवं नागरिक समाज को संगठित प्रयास करना होगा।

खेल का मैदान हो या विज्ञान की प्रयोगशालाएँ, सैन्य भूमि हो या शल्य कक्ष, प्रशासनिक जगत से लेकर अकादमिक जगत तक आज कोई भी क्षेत्र महिलाओं की सहभागिता से अछूता नहीं है। आज धरती से लेकर अन्तरिक्ष तक हर क्षेत्र, महिलाओं के परिश्रम से अनगूँजित हो रहा है। स्वामी विवेकानन्द ने कभी कहा था, 'शक्ति के बिना संसार का उत्थान नहीं हो सकता।' आज उनकी वाणी अक्षरश: सत्य सिद्ध हो रही है। ○○○

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची : **१.**पत्रावली – स्वामी विवेकानन्द **२.**विवेकानन्द साहित्य, भाग-६ **३.** भारतीय नारी - स्वामी विवेकानन्द **४.** साक्षात्कार - अरुणिमा सिन्हा, निवेदिता रघुनाथ भिड़े **डाटा स्रोत –** भारतीय वायुसेना, विश्व बैंक, डेलॉइट, खेल मंत्रालय

पृष्ठ ११६ का शेष भाग

अज्ञानता से 'मैं करता हूँ', ऐसा अभिमान होता है। भगवान ही सब कुछ करते हैं, यह ज्ञान है। भगवान ही कर्ता हैं और सब अकर्ता हैं। सिद्धि होने से अहंकार होगा और अभिमान रहेगा, तो ईश्वर नहीं मिलेगा। जब तक यह अभिमान है, तब तक ज्ञान नहीं है और मुक्ति भी नहीं है। उसे इस संसार में लौटना ही पड़ेगा। अभिमान रहने पर भगवान दिखाई नहीं देते। भगवान के घर के दरवाजे पर कुछ बाधायें हैं, इसलिए उन्हें देख नहीं पाते। अहंकार नहीं छोड़ने से उनकी कृपा नहीं होती है।

भवन्ति सम्पदं दैवी अभिजातस्य भारत

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि गीता, उपनिषद, वेद और वेदान्त आदि की व्याख्या इस युग में श्रीरामकृष्ण के जीवन के आलोक में की जानी चाहिए। क्योंकि श्रीरामकृष्ण का जीवन गीता-उपनिषद, वेद-वेदान्त आदि का जीवन्त भाष्य सदृश है। स्वामी विवेकानन्द जी 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' नामक विषय पर लाहौर में व्याख्यान देते हुये कहते हैं – "यदि कोई हिन्दू आध्यात्मिक नहीं है, तो मैं उसे हिन्दू नहीं कहूँगा। यहाँ भारत में हमारे जीवन का पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है कि हम पहले आध्यात्मिक बनें और तत्पश्चात् अन्य चीजों को आने दें। इसे तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम यह बात अधिक अच्छी तरह से समझ सकेंगे कि अपने राष्ट्रीय कल्याण के लिये हमें आज क्यों सबसे पहले अपने राष्ट्र के समस्त आध्यात्मिक शक्तियों को ढूँढ़ निकालना होगा, जैसा कि अतीत काल में किया गया था और चिरकाल तक किया जाएगा। अपनी बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्र करना ही भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का एकमात्र उपाय है।" (वि.सा. ५/२६२)

उपरोक्त वाणी को देखते हुए हम नि:संदेह यह कह सकते हैं कि गीता में उक्त दैवी सम्पत्ति ही उस आध्यात्मिकता का आधार है और एक प्रकृत हिन्दू एक दैवीसम्पद युक्त व्यक्ति ही हो सकता है। किसी भी सम्प्रदाय में दैवीसम्पद युक्त व्यक्ति ही सच्चे आध्यात्मिक हो सकते हैं। यही वास्तविक हिन्दू या सार्वजनीन सनातन धर्म की असली पहचान है। युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन में दैवी सम्पद के व्यावहारिक रूप को प्रस्तुत कर एक अन्यतम आदर्श स्थापित किया है, जो मानवता के लिये प्रेरणा का स्रोत है। ○○○

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस – प्रेरणा और सशक्तिकरण का उत्सव

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

प्रत्येक वर्ष ८ मार्च को हम अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाते हैं। यह दिन महिलाओं की उपलब्धियों को सम्मानित करने और समानता व सशक्तिकरण की दिशा में किए गए प्रयासों पर चिन्तन करने का अवसर है। यह दिन हमें स्मरण दिलाता है कि महिलाएँ कितनी शक्तिशाली हैं और हमें यह सुनिश्चित करने की प्रेरणा देता है कि हर युवा महिला स्वयं को सशक्त, सम्मानित और प्रेरित अनुभव करें।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस का महत्त्व

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस केवल उपलब्धियों का उत्सव नहीं है; यह विश्वास दिलाने का दिन भी है कि महिलायें जो चाहें, वे बन सकती हैं। यह उन्हें उन महिलाओं से परिचित कराने का अवसर है, जिन्होंने बाधाओं को तोड़ा, विश्व को बदलने वाले आविष्कार किए, राष्ट्रों का नेतृत्व किया और मानव अधिकारों के लिए आवाज उठाई। ये उदाहरण महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये महिलाओं को बड़े स्वप्न देखने, रूढ़ियों को तोड़ने और अपनी क्षमता को समझने में सहायता करते हैं।

शिक्षा और समानता का महत्त्व

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस का एक मुख्य सन्देश यह है कि हर महिला को शिक्षा, स्वतंत्रता और समानता का अधिकार है। विश्वभर में अब भी कई महिलायें शिक्षा से वंचित हैं। लेकिन यह सिद्ध हो चुका है कि जब महिलायें शिक्षित होती हैं, तो समाज प्रगतिशील होता है, अर्थव्यवस्थाएँ बढ़ती हैं और न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित होती है। यह दिन शिक्षा की शक्ति पर जोर देने और महिलाओं की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच में आनेवाली बाधाओं को दूर करने की वकालत करने का अवसर है।

आत्म-मूल्य और आत्मविश्वास का निर्माण

महिलाओं को सशक्त बनाने का एक मुख्य कार्य उन्हें यह सिखाना है कि उनका मूल्य स्वाभाविक है और बाहरी मानकों से निर्धारित नहीं होता। उन्हें यह जानना चाहिए कि उन्हें एक निश्चित रूप में दिखने, एक विशेष तरीके से व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं है। आत्म-मूल्य को बढ़ावा देकर और आत्म-स्वीकृति को प्रोत्साहित करके, हम आत्मविश्वास और सक्षम युवा-महिलाओं की नींव रखते हैं, जो स्वयं पर और अपनी सम्भावनाओं पर विश्वास करती हैं।

युवा महिलाओं को STEM के क्षेत्रों में प्रोत्साहित करना

पारम्परिक रूप से विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (STEM) के क्षेत्रों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम रहा है। हालाँकि, STEM ऐसा क्षेत्र है जो भविष्य में अनगिनत अवसर प्रदान करता है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस STEM में छात्राओं को प्रोत्साहित करने का एक मंच है, जहाँ उन्हें संसाधन, रोल मॉडल, प्रयोग करने और सीखने के अवसर मिलते हैं। आज कई कार्यक्रम, छात्रवृत्तियाँ और संगठन STEM में करियर बनाने में उत्सुक छात्राओं का समर्थन कर रहे हैं, जिससे वे नवाचार को अपने जीवन में अपना सकें और सफल हो सकें।

बदलाव लाने वालों को सशक्त बनाना

आज की युवा छात्रा कल की नेता, आविष्कारक, और बदलाव लाने वाली होंगी। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाकर हम प्रेरित छात्राओं की एक नई पीढ़ी को प्रोत्साहित कर रहे हैं, जो न केवल ऊँचे लक्ष्य रखेंगी, बल्कि दूसरों को भी ऊपर उठाने का काम करेंगी। ये छात्राएँ यह जानकर दूसरों को प्रेरित कर सकती हैं कि उनके पास अपने स्वप्नों को पूरा करने की स्वतंत्रता है और वे किसी भी श्रेत्र में अपना करियर बना सकती हैं।

कठिनाइयों पर विजय पाने वाली प्रतिभा-सम्पन्न भारतीय महिलाएँ

भारत में विज्ञान, रक्षा, चिकित्सा और शोध के क्षेत्र में ऐसी अनेक प्रतिभासम्पन्न महिलाएँ हैं, जिन्होंने कठिनाइयों को पार कर श्रेष्ठ ऊँचाइयों को प्राप्त किया है। उनके

संघर्ष और दृढ़ संकल्प ने उन्हें केवल व्यक्तिगत सफलता ही नहीं दिलाई, बल्कि वे अनगिनत महिलाओं के लिए प्रेरणा-स्रोत भी बन गई हैं। यहाँ हम कुछ ऐसी ही भारतीय महिलाओं के बारे में जानेंगे, जिन्होंने चुनौतियों का सामना किया और अपने क्षेत्र में इतिहास रच दिया।

१. डॉ. अदिति पंत – समुद्र वैज्ञानिक और अन्टार्कटिक खोजकर्ता डॉ. अदिति पंत उन पहली भारतीय महिलाओं में से हैं, जो १९८३ में अन्टार्कटिका तक पहुँची थीं। उन्होंने समुद्र विज्ञान में अपना करियर बनाते हुए कई चुनौतियों का सामना किया और अपने अनुसन्धान से भारत के अन्टार्कटिक शोध कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनका समर्पण और साहस पर्यावरण संरक्षण और वैज्ञानिक शोध में करियर बनानेवाली महिलाओं को प्रेरणा देता है।

२. डॉ. रितु करिधाल – भारत की 'रॉकेट वुमन' और मंगल मिशन की वैज्ञानिक डॉ. रितु करिधाल भारत के पहले मंगल अभियान (मंगलयान) की डिप्टी ऑपरेशंस डायरेक्टर थीं। उन्होंने लखनऊ में समाज की रूढ़ियों को तोड़ते हुए एयरोस्पेस इंजीनियरिंग में अपने सपनों को पूरा किया और ISRO में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके योगदान ने भारतीय युवा-लड़कियों के लिए अन्तरिक्ष विज्ञान और इंजीनियरिंग में करियर बनाने के सपनों को प्रेरित किया।

३. डॉ. कमल रानाडिवे – कैंसर अनुसन्धान में अग्रणी डॉ. कमल रानाडिवे भारत की प्रसिद्ध बायोमेडिकल शोधकर्ता थीं, जिन्होंने कैंसर और कुष्ठ रोग पर अपने अनुसन्धान से चिकित्सा क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। उन्होंने भारतीय महिला वैज्ञानिक संघ की स्थापना की। उनका जीवन विज्ञान और स्वास्थ्य-देखभाल में आनेवाली महिलाओं के लिए एक प्रेरणा है।

४. कैप्टन तानिया शेरगिल – भारतीय सेना में एक नई पहचान कैप्टन तानिया शेरगिल भारतीय सेना की एक प्रेरणादायक अधिकारी हैं, जिन्होंने २०२० के गणतंत्र दिवस परेड का नेतृत्व किया। उन्होंने शारीरिक और मानसिक कठिनाइयों का सामना करते हुए भारतीय सेना में अपनी पहचान बनाई। उनके साहस और दृढ़ संकल्प ने रक्षा सेवाओं में महिलाओं के लिए एक नया उदाहरण स्थापित किया।

५. डॉ. गगनदीप कांग – 'वैक्सीन गॉडमदर ऑफ इण्डिया' डॉ. गगनदीप कांग एक प्रसिद्ध वायरोलॉजिस्ट हैं जिन्हें लन्दन की रॉयल सोसाइटी में शामिल होनेवाली पहली भारतीय महिला होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने भारत में बच्चों की बीमारियों और वैक्सीन पर अपने शोध से महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। स्वास्थ्य सेवाओं के लिए उनका समर्पण और विज्ञान में उनकी उत्कृष्टता भावी वैज्ञानिकों के लिए प्रेरणादायक है।

१०. डॉ. सौम्या स्वामीनाथन – विश्व स्वास्थ्य संगठन की मुख्य वैज्ञानिक डॉ. सौम्या स्वामीनाथन एक प्रसिद्ध बाल रोग विशेषज्ञ हैं और वर्तमान में WHO में मुख्य वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने टी.बी. और अन्य संक्रामक रोगों पर अपना काम केंद्रित किया और स्वास्थ्य सेवा में बड़ी भूमिका निभाई। उन्होंने कई चुनौतियों का सामना किया, लेकिन वैश्विक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में अपना योगदान दिया और महिलाओं को विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

६. डॉ. शुभा टोले – न्यूरोसाइंटिस्ट और पुरस्कार विजेता शोधकर्ता डॉ. शुभा टोले एक प्रमुख न्यूरोसाइंटिस्ट हैं, जिन्होंने मस्तिष्क विकास के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण खोजें की हैं। उनकी खोजों ने न्यूरोसाइंस के क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर सराहना प्राप्त की है। महिलाओं को अनुसन्धान के क्षेत्र में आनेवाली चुनौतियों का सामना करते हुए उन्होंने इस क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण पहचान बनाई और वे अनुसन्धान में करियर बनानेवाली महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं।

निष्कर्ष – इन महान् महिलाओं ने सिद्ध कर दिया है कि दृढ़ संकल्प, बुद्धिमत्ता और साहस के साथ कुछ भी असम्भव नहीं है। उनके योगदानों ने न केवल उनके क्षेत्रों में बदलाव लाए हैं, बल्कि अनगिनत महिलाओं को विज्ञान, चिकित्सा, रक्षा और शोध के क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित किया है। ये कहानियाँ हमें यह याद दिलाती हैं कि चुनौतियों के बावजूद उत्साह और समर्पण के साथ किसी भी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस केवल एक उत्सव नहीं है; एक आह्वान है। महिलाओं को शिक्षित, समर्थ और सशक्त बनाकर हम ऐसा भविष्य बनाते हैं, जहाँ हर महिला प्रगति कर सके, नवाचार अपना सके और नेतृत्व कर सके। आइए हम, युवा-महिलाओं को प्रेरित और प्रोत्साहित करें, ताकि वे यह जानकर आग्रसर हों कि वे महानता प्राप्त कर सकती हैं और विश्व में एक उत्कृष्ट स्थान बना सकती हैं। ○○○

स्वामी विवेकानन्द वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(मत्तगयंद छन्द)

(तर्ज – को नहिं जानत है जग में कपि संकटमोचन नाम तिहारो)

को नहिं जानत हे पुरुषोत्तम !
विश्वविदित महिमा अति न्यारी ।।

बाल समय तुम बालसखा संग ध्यान का खेल किये सुखदाई।
निज घर भीतर खेल ही खेल में ध्यान-समाधि गम्भीर लगाई।
माता, स्वजन जब खोजत आए, देख दशा सब विस्मित भारी ।।१।।
को नहिं जानत हे पुरुषोत्तम ! ...
ईश्वर-खोज की व्याकुलता में गए दक्षिणेश्वर कौतुक भारी ।
ईश्वर के अस्तित्व में संशय, तर्क-वितर्क से बुद्धि न हारी।
प्रभुवर ने पहचान लिया, तुम ध्यानपरायण ऋषि अवतारी।।२।।
गुरुवर-संग अनुप मिलन में प्रश्न किए मन संशय भारी।
क्या सचमुच ही ईश्वर नामक है कोई सत्ता अविकारी ।
गुरु ने सब सन्देह मिटाया, पाकर शिष्य सबल, अधिकारी ।।३।
ध्यान-समाधि की साध प्रबल, गुरु से मन की अभिलाष बताई।
लेकिन उत्तर में गुरु ने कैसी अद्‌भुत फटकार लगाई ।
ध्यान-समाधि से भी बढ़कर शिव-ज्ञान से सेवा-व्रत अविकारी ।।४।।
ज्ञान-विवेक-विराग भरा मन अन्तर में प्रभु भव-भयहारी।
माया ने शक्ति दिया, फिर भी वह पास तुम्हारे जाने से हारी।
प्रभु उपमा देकर कहते, तुम म्यानरहित तलवार दु धारी ।।५।।
साहस-शील-विवेक-विचार से युक्त सबल मन-बुद्धि तुम्हारी।
जप-तप-साधन-त्याग-तितिक्षा में तुम प्रभु-शिष्य विवेक-विहारी।
मुझको सदा निर्भीक बना दो, हे निर्भयता-मन्त्र-प्रचारी।।६।।
जब परिव्राजक बन करके तुम भारत में उन्मुक्त बिहारी ।
राजा से लेकर रंक सभी के ही द्वार गए बनकर पदचारी ।
मन में यही चिन्ता कैसे कटे, भारत की रजनी अँधियारी ।।७।।
देह सबल छविरूप विमोहन बुद्धि असीमित जग-हितकारी।
देश-विदेश में धर्म सनातन-भाव-विचार सुदूर-प्रसारी ।
बैरी-विरोधी भी प्रेरित हो, करते निज भाव-स्वभाव सुधारी ।।८।।
जनगण के मन-भाव-विचार के तुम उन्नायक, पर उपकारी ।
सेवा-धर्म-प्रचारक, मानव-दिव्य-स्वरूप-विचार-प्रसारी।।
हे नरपुंगव ! तुम मन की दुर्बलताजन्य सकल भयहारी ।।९।।
प्रभुवर के शाश्वत भावों के तुम संवाहक भाव-प्रसारी।
प्रभुवर तुममें, तुम प्रभुवर में, समझे नहीं मम बुद्धि बिचारी।
पर-दुखकातर निश्छल अन्तर, उस पर ही मम मन बलिहारी ।।१०।।
भारत देश में और विदेश में अभिनव भाव-समन्वयकारी।
हे युगनायक ! सचमुच ही तुम नवयुगधर्म-प्रवर्तनकारी ।
चाहे जहाँ भी रहे जग में,पर तुमको स्वदेश की माटी ही प्यारी।।११।।
भारत देश विशेष तुम्हें प्रिय, अद्‌भुत सन्त, स्वदेश-पुजारी।
तुम निज देश-विदेश में पीड़ित मानवता के परम उपकारी।
भारत-ध्यान में डूब गए तुम बैठे शिला पर कन्याकुमारी।।१२।।
धर्म सनातन-कीर्ति ध्वजा तुमने फहराकर सार बताया।
धर्म कभी संघर्ष नहीं, बस भाव-समन्वय एक उपाया।।
आत्मस्वरूप करो उद्‌घाटित, तुम हो दिव्य, अमृत अधिकारी।।१३।।
जो बलवान, चरित्र से युक्त, पवित्र मनुष्य, तुम्हें प्रिय भारी।
तेरा यही उद्‌घोष मनुष्य स्वरूप से दिव्य, अमर, अविकारी।
मन में चरित्र की शक्ति रहे, बस माँगे यही यह दीन भिखारी ।।१४।।
तुम मन-कर्म-वचन सबही विधि शुद्ध, पवित्र, विमल, अविकारी।
श्रीमुखमण्डल तेज अपरिमित, वाणी में शक्ति प्रबल चिनगारी।
मुझमें भी साहस-भाव-विचार भरो अब हे भवबन्धनहारी।।१५।।
सत्य-सनातन-शुभ-आध्यात्मिक-भाव-विचार के जग-विस्तारी।
सचमुच ही तुम जीवन भर रहे भारत माता के सच्चे पुजारी ।
ऐसे पवित्र, स्वदेश-पुजारी की सेवा करूँ, यह साध हमारी ।।१६।।
जब अमेरीका के शहर शिकागो में विश्व की धर्मसभा हुई भारी।
अद्‌भुत ढंग से पहुँचे वहाँ तुम, हे परिव्राजक-वेश-बिहारी।
भारत ने किया विश्वविजय जग में फैली शुभ कीर्ति तुम्हारी ।।१७।।
ब्रह्म से लेकर कीट-पतंग सभी में विराज रहे भगवाना।
सबके ही चरणों में तुम मन-प्राण समर्पित कर दो विगत अभिमाना।।
खोज रहे तुम ईश्वर को कहाँ, वे तो जन-जन हृदय बिहारी ।।१८।।
भारत के उत्तर-पश्चिम में गए जब राजस्थान-प्रदेशा ।
तब तुम राजा मंगल सिंह जी के दरबार में अतिथि विशेषा ।।
मूर्ति की पूजा को सिद्ध किए तुम, शुद्ध किए नृप-दृष्टि विकारी ।।१९।।
प्रभुवर के लीलासहचर तुम, ज्ञान-विराग विवेक-बिहारी।।
बस प्रभु की इच्छा से ही संचालित सब मन-बुद्धि तुम्हारी।
मुझको भी यंत्रस्वरूप बनाकर, दूर करो दुर्बलता सारी।।२०।।
भारत का उत्थान तुम्हें प्रिय, तुम भारत के पुनरुद्धारी।
तुम निज देश-विदेश में पूजित, भारत के वेदान्त-प्रचारी ।।

भारत का सिर ऊँचा किए तुम भारत माता ही इष्ट तुम्हारी ।।२१।।
नाम श्रवण से ही शक्ति मिले, मन आनन्दित छविरूप निहारी।
जो मन से अति दीन-मलीन, बने वह भी निर्भय सुविचारी।
तेरा विमल छविरूप हृदय में विराजे सदा, यह साध हमारी ।।२२।।
भारत माता के सच्चे सपूत, सदा बल-साहस के संचारी।
मानव मात्र तुम्हारा रहेगा, सदा, चिरकाल, ऋणी आभारी।
विनती यही, मम जन्म जहाँ भी हो, जीवनभर करूँ भक्ति तुम्हारी।।२३।।
तेरा यही उद्घोष, 'उठो, अब जागो, मनुष्य बनो, सुविचारी।
तुम जड़ या पशुतुल्य नहीं, तुम दिव्य हो, चेतन सत्ता तुम्हारी।'
मुझको भी वीर मनुष्य बना दो, हे भय-कायरता-अपहारी।।२४।।
ध्यान में सिद्ध, विवेक-विराग के तेज से श्रीमुख की छवि न्यारी।
सबमें ही ईश्वर दिखते तुम्हें, चाहे कीट-पतंग हो, या नर-नारी ।
प्रभु कहते, तुम ध्यानपरायण ऋषिवर ईश्वर कोटि तुम्हारी ।।२५।।
मेरा मधुप-मन श्रीपदपद्म का कर मधुपान, बने अविकारी।
तेरे ही भाव में डूबा रहे मन, पूरी करो यह साध हमारी ।
तेरा मनोहर रूप अनूप, बसे चिरकाल हृदय-फुलवारी ।।२६।।
को नहिं जानत हे पुरुषोत्तम ! विश्वविदित महिमा अति न्यारी ।।

कविता

प्रभु मैथिलीश्वर त्वं स्वयम्

स्वामी मैथिलीशरण

हे राम राम नमामि राम नमामि हे करुणायनं ।
हे पूर्ण काम कृपालु कोमल दिव्य रूप सुधाकरं ।
हे जनक तनया प्राण प्रिय अभिराम त्वं सुखदायकं।
हे राम रूप अनूप सुन्दर व्यापकं धरणीधरं ।
हे वेद शास्त्र पुराण स्मृतिमय केन्द्र मध्यस्थापनम् ।
तव नाम रूप अनूप लीला धाम अवधनिवासनं ।
हे चित्रकूट निवासनं धरणीसुता सुख दायकं।
सिय हृदय प्राणस्वरूप त्वं वैराग्यरागनिवृत्तिकम् ।
हे जगतकारणकारकं भव भव-विभव करुणाकरं।
हे शिव पराभव कारकं हे राम तुम रामेश्वरम् ।
हे भरत प्रिय सौमित्र हनुमत कौशलेश वरम सुतम् ।
हे शान्ति दायक शरण के प्रभु मैथिलीश्वर त्वं स्वयम् ।

कविता

श्रीरामकृष्ण कृपालु भगवन्

डॉ. श्रीधर प्रसाद द्विवेदी

श्रीरामकृष्ण कृपालु भगवन, शरण में कर लीजिये ।
करुणा करें हे दीनबन्धो, भक्ति पावन दीजिये ।।
सत्कर्म पथ पर अग्रसर हो, नित्य ही चलता रहूँ ।
भवसिन्धु सम्मुख खड़ा मैं हूँ, पार भव से कीजिए ।।
सद्ज्ञान, कर्म, उपासना पथ, ज्ञान है कुछ भी नहीं ।
मानसतिमिर करके तिरोहित, ज्योति से भर दीजिए ।।
रसना अपावन रस न पाई, नाम-धुन आती नहीं ।
हो नाम पावन नाद अनहद, हृदय तन्त्री कीजिये ।।
श्रीरामकृष्ण शरणागति से, जीव का उद्धार हो ।
गुरुवरशरण आश्रय धरूँ मैं, शीश पर कर दीजिये ।।

जप करना यानी निर्जन में चुपचाप भगवान का नाम लेना। एकाग्र होकर भक्तिपूर्वक उनका नाम जपते रहने से उनके रूप के दर्शन होते हैं – उनका साक्षात्कार होता है। जैसे जंजीर से बँधी हुई बल्ली गंगा में डुबोई हुई हो और जंजीर का दूसरा छोर तीर पर बँधा हुआ हो, तो जंजीर की एक-एक कड़ी पकड़कर आगे बढ़ते हुए, पानी में उतरकर उसी तरह चलते-चलते बल्ली का स्पर्श किया जा सकता है; ठीक वैसे ही जप करते-करते मग्न हो जाने पर धीरे-धीरे भगवान का साक्षात्कार होता है।

जाने-अनजाने, किसी भी रीति से क्यों न हो, अगर कोई अमृतकुण्ड में एक बार गिर पड़े तो अमर हो जाता है। इसी प्रकार कोई जाने-अनजाने में या और किसी भी तरह भगवान का नाम क्यों न ले, वह अन्त में अमरत्व प्राप्त करता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(गतांक से आगे)

भुवनेश्वर मठ की स्थापना : २९ अक्तूबर, १९१९ को महाराज अनेक साधु-भक्तों के साथ बेलूड़ मठ से भुवनेश्वर पहुँचे। वह दुर्गापूजा का समय था। ३१ अक्तूबर, १९१९ को महाराज ने भुवनेश्वर मठ की स्थापना की। अगले दिन ब्राह्मणों तथा दरिद्र-नारायणों के लिए एक बड़े भण्डारे का आयोजन किया गया। उस समय महाराज लगभग एक वर्ष तक भुवनेश्वर में रहें। उसी समय उस क्षेत्र में अकाल पड़ा था। महाराज ने उस क्षेत्र में राहत कार्य की व्यवस्था की। स्थानीय लोगों के लिए चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था करने हेतु उन्होंने भुवनेश्वर मठ में एक स्थायी धर्मार्थ औषधालय भी प्रारम्भ किया।[३७]

स्वामी शंकरानन्द के कथनानुसार, भुवनेश्वर मठ का एक मंजिला भवन था, जिसमें चार कमरे थे। बीच में एक हॉल तथा उत्तर और दक्षिण की ओर चौड़े बरामदे थे। आगन्तुकों के लिए अलग कमरा नहीं था। राजा महाराज दक्षिणी बरामदे के पश्चिम के कमरे में रहते थे। उनके कमरे के सामने श्रीरामकृष्ण का मन्दिर था। मन्दिर की पहली मंजिल का निर्माण महाराज के समय में आरम्भ हुआ था, लेकिन उनकी महासमाधि के बाद वह पूरा हुआ। उन्होंने महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी) को पहली मंजिल पर श्रीरामकृष्ण की प्रतिमा को स्थापित करने का निर्देश दिया था।[३८]

भुवनेश्वर मठ के परिसर में सभी ओर बजरी पड़ी हुई थी। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने एक वर्ष में ही उसे फलों के पेड़ों और फूलों के पौधों से सजा दिया। जब कोई आश्रम देखने आता, उसे यह स्थान रेगिस्तान में एक मरूद्यान सदृश लगता था। यहीं स्वामी ब्रह्मानन्द ने एक बार कहा था, 'पेड़ों में भावनाएँ होती हैं। वे जानते हैं कि उनकी देखभाल कौन करता है। वे प्रसन्न होते हैं, जब उनका संरक्षक उनके पास आता है। वे दुखी होते हैं, जब वह व्यक्ति चला जाता है। उनकी भावनाएँ मनुष्यों की भावनाओं के समान होती हैं। वे कभी कृतघ्न नहीं होते। फल और फूल देकर वे उस व्यक्ति की सेवा करते हैं, जो उनका संरक्षण करता है।'[३९]

स्वामी कमलेश्वरानन्द अपनी दैनन्दिनी में लिखते हैं कि एक दिन वे राजा महाराज से दवा लेने बेलूड़ मठ गए। महाराज ने बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) को बुलाया और कहा, 'कृपया उसे उस पौधे की कुछ जड़ें दो। मैं उसे उखाड़ नहीं सकता, क्योंकि मैं उसे सचेतन देख रहा हूँ।' हमने उनसे कई बार सुना है कि वे अनेक वस्तुओं में चेतना देखते थे। एक बार वे भुवनेश्वर में जंगल की ओर जा रहे थे, जब वे एक फूलों से लदे वृक्ष के पास पहुँचे, तो उन्होंने पाया कि वह उन्हें बुला रहा है और कह रहा है, 'आओ, आओ और मेरी सुगंध का आस्वाद लो।' यह सब बातें अतिन्द्रिय स्तर की हैं और ऐसे कथन महाराज जैसे उच्च आध्यात्मिक व्यक्ति को ही शोभा देते हैं।[४०]

स्वामी ब्रह्मानन्द को पुरी के शशिनिकेतन के पीछे के एक कोने में किसी पौधे की कटी हुई डालियाँ पड़ी दिखीं। उन्होंने वहाँ के व्यवस्थापक श्रीचक्रवर्ती से उसके बारे में पूछा। उन्हें पता चला कि वे एक विशेष प्रकार के नींबू के पेड़ (पाती-नींबू) की डालियाँ थीं। दुर्भाग्य से उस पेड़ में गत दो-तीन वर्षों से बिल्कुल भी फल नहीं आये थे। डालियों की परीक्षा कर महाराज ने कहा, 'ऐसा लगता है कि ये अभी भी

जीवित हैं!' फिर वे उसकी अच्छी तरह से देखभाल करने लगे। कुछ ही दिनों में उसमें नये पत्ते आ गये और कुछ ही महीनों में वह एक बड़े झाड़ीदार पेड़ में परिणत हुआ। जब महाराज शशिनिकेतन में थे, तब उस पेड़ की बहार आई। पुरी से कलकत्ता लौटने के बाद महाराज जब बलराम मन्दिर में ठहरे थे, तो बड़ी-बड़ी नींबू से भरी एक टोकरी पुरी से आई। जिस पौधे की उन्होंने पुरी में बहुत देखभाल की थी, उसमें प्रथम बार फल लगे थे।[४१]

उन दिनों भुवनेश्वर मठ के लिए स्कन्द-मूल, अरबी और कद्दू के अलावा कोई भी सब्जी खरीदना कठिन था। इसलिए स्वामी ब्रह्मानन्द के एक शिष्य प्रति सप्ताह कलकत्ता से सब्जियों के दो पार्सल भेजा करते थे। लेकिन वे सब्जियाँ भी मठ के लिए पर्याप्त नहीं होती थीं। एक दिन भोजन के बाद कुल्ला करते समय, अन्दर के प्रांगण में नाली के पास महाराज ने एक अंकुर को उगते देखा। उसका निरीक्षण करने के बाद उन्हें वह बैगन का लगा। उन्होंने कहा, 'उसे कुछ न करो, उसे वहीं बढ़ने दो।' उसकी देखभाल करने के बाद वह अंकुर बड़े स्वस्थ पौधे में बदल गया। कुछ दिनों में ही वह बैगन का पौधा बहुत फल देने लगा, मानो साधुओं की देखभाल का ऋण चुका रहा हो।[४२]

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज ने लिखा हैं, 'दिसम्बर, १९१९ के अन्त में एक शाम पुरी के श्री अटल मैत्र अपनी प्रथम पत्नी के साथ महाराज से मिलने भुवनेश्वर आए। वे वृद्ध व्यक्ति बहुत उदास और दुखी थे। यह देख महाराज ने स्वामी वरदानन्द से भजन गाने को कहा। वरदानन्द भजन गाने लगे – हे मन, उस दिव्य माँ के चरणों की शरण जाओ, जो सभी भय को दूर करती हैं। भजन सुनकर तथा उससे भी अधिक महाराज के दर्शन तथा उनके उपदेश सुनकर वृद्ध व्यक्ति का चेहरा चमक उठा और वह आनन्द से भर गया। उनके भाव-परिवर्तन को देख हम सभी को बहुत प्रसन्नता हुई।'[४३]

१२ जनवरी, १९२० को स्वामी विवेकानन्द जयन्ती के अवसर पर महाराज ने नौ ब्रह्मचारियों को संन्यास और एक को ब्रह्मचर्य दीक्षा प्रदान की। २३ जनवरी, १९२० को महाराज का जन्मदिन मनाया गया और शाम को रामनाम तथा भजन का कार्यक्रम हुआ। १ मार्च, १९२० को रामबाबू के आग्रह पर महाराज छह दिनों के लिए पुरी गए और वहाँ शशिनिकेतन में रुके और फिर वे भुवनेश्वर लौट आए। यह उनकी पुरी की अन्तिम यात्रा थी। रामबाबू भुवनेश्वर में लगभग तीन महीने रहे। इस अवधि में रामबाबू ने भुवनेश्वर मठ के लिए काफी धनराशि खर्च की। स्वामी सारदानन्द और वैकुण्ठनाथ सान्याल भी भुवनेश्वर आए। ७ मार्च, १९२० को महाराज कलकत्ता के लिए रवाना हुए।

पुनः भुवनेश्वर : २७ मार्च, १९२० को फिर स्वामी ब्रह्मानन्द रामलाल दादा के साथ भुवनेश्वर लौट आए।[४४] पी. शेषाद्रि अय्यर अपने संस्मरणों में उस समय की घटना के बारे में लिखते हैं – पुरी में महाराज से एक व्यक्ति मिला था। उसने मुझे अपना अनुभव बताया। वह अपनी माँ और कुछ अन्य महिला सम्बन्धियों के साथ तीर्थ-यात्रा पर पुरी गया था। यह जानने पर कि महाराज पुरी में हैं, वे महाराज से मिलने साथियों को बिना बताये चले गये। महाराज को प्रणाम करने पर उन्होंने उनका परिचय पूछा। जब उन्हें पता चला कि वह भक्त त्रावणकोर से आया है, तो महाराज ने विशेष रूप से उनसे श्री थम्पी के बारे में पूछा और अपने सेवक से उनका पता लिखने को कहा। इसके बाद महाराज ने उस व्यक्ति से कहा, 'मुझे लगता है कि तुम जगन्नाथ के मन्दिर गए थे, लेकिन तुम्हें पवित्र प्रसाद नहीं मिला। तुम प्रसाद यहीं ले लो।' महाराज ने यह सब कुछ कैसे जान लिया, यह सोच वह आश्चर्यचकित रह गया। महाराज के आज्ञानुसार उसने प्रसाद ग्रहण किया और महाराज पूरे समय उसे देखते रहे। प्रसाद ग्रहण करने के बाद जैसे ही भक्त ने हाथ धोया, महाराज ने अचानक उससे कहा, 'तुरन्त जाओ, तुम्हारे सम्बन्धी तुम्हें खोज रहे हैं और वे चिन्तित हैं।' उसने महाराज से विदा ली और चल पड़ा। रास्ते में उसे अपनी माँ और अन्य लोग मिले, वे चिन्तित थे कि वह बिना बताये कहाँ चला गया है।[४५]

राजा महाराज को भुवनेश्वर मठ बहुत प्रिय था। वे इसे अपना तपोवन मानते थे। मठ-भवन एक भव्य महल जैसा था, लेकिन निर्माण का व्यय मात्र पाँच-छह हजार रुपये था। राजा महाराज ने भुवनेश्वर मठ के लिए आय के स्थायी स्रोत की समुचित व्यवस्था की थी। वहाँ भगवान नामक एक कुशल राजमिस्त्री थे। उन्होंने पारिश्रमिक की चिन्ता किए बिना पूरी लगन से मठ-निर्माण में प्रारम्भ से अन्त तक काम किया। वे पलस्तर करने में निपुण थे और बढ़ईगीरी भी जानते थे। राजा महाराज उनके काम, उनकी कारीगरी और काम के प्रति उनकी लगन की बहुत प्रशंसा करते थे। महाराज ने उन्हें रजत पदक से सम्मानित किया था। वे हमेशा ठाकुर और मठ के साधुओं को प्रणाम करते थे। वे प्रतिदिन

सन्ध्या-आरती में भी सम्मिलित होते थे। उन्होंने महाराज से दीक्षा के लिए अनुरोध किया। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। एक दिन उन्होंने साधु बनने और महाराज की सेवा करने की इच्छा व्यक्त की। महाराज ने उनकी इच्छा पूरी की और उन्हें मठ में रहने की अनुमति दी। उन्होंने न केवल मृत्यु तक अपनी सेवाएँ दीं, बल्कि जप और ध्यान को भी समय दिया। इस तरह उनका जीवन बदल गया। भगवान राजमिस्त्री स्वामी नित्यसिद्धानन्द बन गए। वे १९२४ में संघ में सम्मिलित हुए और १९३७ में संन्यास लिया और १९४५ में उनका निधन हो गया।[४६]

भुवनेश्वर मठ की स्थापना के बाद महाराज अपना अधिकांश समय साधु और भक्तों के साथ वार्तालाप करने, आध्यात्मिक चर्चा करने और भजन-कीर्तन में व्यतीत करते थे। एक दिन एक साधु ने महाराज को प्रणाम करके आशीर्वाद माँगा, ताकि उसे ठाकुर के चरणों में भक्ति मिल सके। महाराज कुछ देर मौन रहे और गम्भीर हो गए तथा थोड़ी देर बाद बोले, 'देखो, अगर कोई पूर्ण रूप से केवल भगवान पर निर्भर होकर विनम्र हो जाए तथा सदैव दीन-भाव रखे, तभी उसे भक्ति मिल सकती है।' जप और ध्यान के बारे में बहुत-सी बातें बताने के बाद, एक दिन उन्होंने उससे कहा, 'सदैव जप करते रहो, यहाँ तक की साँस लेते हुए भी। एक बार इसकी आदत डाल दी जाए, तो जप तुम्हारे लिए स्वाभाविक हो जाएगा और वह नींद से पहले तथा पश्चात् भी जारी रहेगा। अगर कोई अपना जप और ध्यान ठीक से करता है, तो उसके तप के प्रभाव से एक मठ सुचारु रूप से परिचालित हो सकता है।'

१९१९-१९२० में भुवनेश्वर क्षेत्र के तीन स्थानों पर रामकृष्ण संघ का राहत कार्य चल रहा था। राहत-कार्य के प्रभारी साधु अथक परिश्रम कर रहे थे। सखीचन्दबाबू नामक एक भक्त अभावग्रस्तों को बाँटने के लिए विभिन्न स्थानों से बहुत सारे कपड़े इकट्ठा करते थे। एक बार उन्होंने महाराज को बहुत सारे कपड़े और व्यवस्थापक महाराज को वितरण के लिए अभावग्रस्तों की सूची दी। उत्तर में व्यवस्थापक महाराज ने कहा, 'केवल आपने दिये हैं, इसलिए हम तब तक कपड़े वितरित नहीं करेंगे, जब तक हम सूची की जाँच न कर लें। हम मिशन के निर्णयानुसार अभावग्रस्तों को कपड़े वितरित करते हैं।' इस स्पष्ट व्यवहार से सखीचन्दबाबू दुखी हुए। बिना किसी को कुछ बताए वे वहाँ से चले गए। जब महाराज को इस घटना के बारे में पता चला, तो उन्होंने साधु को बुलाया और घटना के सच्चाई की जाँच की। उस साधु ने कहा कि उसने केवल मिशन के नियमों का पालन किया है। इस पर महाराज नाराज हो गए और उससे कहा कि 'शिष्टाचार का पालन करना भी तो मिशन का नियम है, तुम उनसे कह सकते थे कि उचित जाँच के बाद कपड़े वितरित किए जाएँगे।' महाराज के निर्देशानुसार साधु के द्वारा सखीचन्दबाबू से क्षमा माँगने पर सखीचन्दबाबू बहुत लज्जा का अनुभव करने लगे।[४७]

पण्डित क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ने अपनी आत्मकथा में निम्नलिखित घटना का वर्णन किया है – 'सन् १९२० में मैं भुवनेश्वर आश्रम में स्वामी ब्रह्मानन्द से मिला था। तब मैंने उनसे कहा, 'मैं श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर सकता था। यह मेरा दुर्भाग्य है कि वह अवसर मेरे हाथ से चला गया। मैं तब विद्यार्थी था। ठाकुर के बारे में सुनकर एक दिन मैं दक्षिणेश्वर जाकर उनसे मिलना चाहता था। मैं दक्षिणेश्वर के लिए चल पड़ा, लेकिन जब मैं आलमबाजार पहुँचा, तो मुझे याद आया कि ठाकुर लोगों के मन की बात पढ़ सकते थे और कभी-कभी उसके बारे में बता भी देते हैं। मैं तब युवा था और मेरे मन में तरह-तरह के विचार आते थे, जिनमें से कुछ को मैं बहुत सावधानी से छिपा लेता था। अगर ठाकुर दूसरों के सामने मेरे उन विचारों के बारे में बात करते, तो मैं बहुत लज्जित हो जाता। इस विचार ने मुझे डरा दिया और मैं वापस लौट आया। इसलिए मैं उनसे नहीं मिल पाया!'

इस पर स्वामी ब्रह्मानन्द ने कहा, 'चूँकि तुम आलमबाजार तक ठाकुर से मिलने गए थे, इसलिए यह उनके दर्शन करने के समान ही है।' 'नहीं महाराज,' मैंने जोर देकर कहा, 'मैंने उन्हें नहीं देखा है। फिर मैं अपने दुर्भाग्य को याद कर आँसू बहाने लगा।' उन्होंने फिर कहा, 'मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि तुमने उन्हें वास्तव में देखा है!' तभी मैंने जल्दी से उनकी ओर देखा और पाया कि वहाँ वे नहीं थे, बल्कि वहाँ श्रीरामकृष्ण बैठे थे!'[४८]

अप्रैल, १९२० में जब महाराज भुवनेश्वर मठ में थे, तब वे एक दिन भुवनेश्वर स्थित पाण्डव गुफाएँ देखने गए। वहाँ वे कुछ देर ध्यान में बैठे और एक दिव्य भाव में लीन हो गये। पाण्डव गुफाओं तथा भुवनेश्वर मठ में लिये गये उनके चित्र हम देख सकते हैं। देखने से तो लगता है कि वे हुक्के का आनन्द ले रहे हैं, पर वास्तव में वे ध्यान में निमग्न थे। इस समय श्री बोशीश्वर सेन, जो एक महान कृषि वैज्ञानिक थे तथा रामकृष्ण संघ के साधुओं के साथ घनिष्ठता

से परिचित थे, महाराज के साथ समय बिताने भुवनेश्वर आए। अपनी इस भेंट के बारे में उन्होंने स्वामी तुरीयानन्द को लिखा। उनके पत्र के उत्तर में स्वामी तुरीयानन्द ने लिखा, 'मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आपने अपनी ईस्टर की छुट्टियाँ महाराज के साथ बहुत आनन्दपूर्वक बिताई है। स्वामी सारदानन्द ने मुझे भुवनेश्वर मठ का संवाद पहले ही दे दिया था। मुझे भी आपसे विशेष रूप से महाराज के अच्छे स्वास्थ्य के बारे में समाचार पाकर बहुत खुशी हुई है।'[४९]

सन् १९२० में जब महाराज भुवनेश्वर में रह रहे थे, तब अप्रैल के महीने में स्वामी अद्भुतानन्द के निधन की सूचना पाकर वे बहुत दुखी हुए। इसके तुरन्त बाद मई, १९२० में रामबाबू की बीमारी की सूचना मिलने पर वे बहुत व्याकुल और चिन्तित हो गए। उन्होंने साधुओं से रामबाबू के लिए ठाकुर से प्रार्थना करने को कहा। लेकिन १४ मई, १९२० को रामबाबू की असामयिक मृत्यु से वे दुखित हो गये और कुछ दिनों के लिए उदास तथा मौन हो गए।

२० जुलाई, १९२० के दिन श्रीमाँ सारदा देवी ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया था। स्वामी ब्रह्मानन्द उस समय भुवनेश्वर मठ में थे। वे सो रहे थे और अचानक बिस्तर से उठकर उन्होंने सेवक से पूछा, 'अभी क्या समय हो रहा है? मुझे नहीं पता कि मैं अचानक क्यों दुख का अनुभव कर रहा हूँ। श्रीमाँ कलकत्ता में है, मुझे उनके स्वास्थ्य की चिन्ता सता रही है!' गुरुवार को जब वे प्रात:भ्रमण के लिए निकलने वाले थे, तभी स्वामी सारदानन्द का तार आया, जो श्रीमाँ के देहत्याग का दुखद समाचार था। समाचार सुनकर स्वामी ब्रह्मानन्द इतने शोक में डूब गए कि वे खड़े रहने में भी असमर्थ थे। वे तुरन्त जाकर बिस्तर पर लेट गए। थोड़ी देर बाद उठे और बोले, 'मैं अशुचि के निमित्त अनुष्ठान करूँगा।' फिर उन्होंने अन्य साधुओं से कहा, 'तुममें से जो श्रीमाँ के शिष्य हैं, वे अपने शोक के तीन दिनों के दौरान जूते न पहनें और केवल हविष्यान्न खायें।' उन्होंने भी तीन दिन के अशुचि-काल में केवल हविष्यान्न खाया तथा श्रीमाँ की स्मृति के सम्मान में कई दिनों तक जूते नहीं पहने। उन्होंने अपना सारा दुख अपने अन्दर दबाए रखा, लेकिन केवल एक बार उन्होंने कहा, 'जब तक श्रीमाँ हमारे बीच थीं, मुझे ऐसा लगता था, जैसे मानो मैं किसी विशाल पर्वत के संरक्षण में हूँ।'[५०]

सन् १९२० में जब महाराज भुवनेश्वर मठ में थे, तो उन्होंने एक साधु से पूछा कि क्या उन्हें ठीक से भोजन मिल रहा है। साधु ने कहा कि मठ में जिस प्रकार का भोजन मिलता है, उससे वह खुश नहीं है। यह सुनकर महाराज गम्भीर हो गए और कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, 'एक व्यक्ति को कितने अन्न की आवश्यकता होती है? साधना के लिए यह कितना अद्भुत स्थान है। ऐसा स्थान तुम्हें कहाँ मिलेगा? साधना के दौरान हमने कितने कष्ट सहे हैं? हमने कभी भी खान-पान की चिन्ता नहीं की।'[५१]

९ नवम्बर, १९२० को भुवनेश्वर मठ में काली पूजा मनाई गई। महाराज के निर्देशानुसार कालीमाता की प्रतिमा कटक से लाई गई, जिसे प्रसिद्ध मूर्तिकार नाटूबाबू ने बनाई थी। प्रतिमा देखकर महाराज बहुत खुश हुए और उन्होंने कहा कि यह प्रतिमा दक्षिणेश्वर की प्रतिमा के समान ही बनी है और उन्होंने मूर्तिकार को बहुत आशीर्वाद दिया। स्वामी अम्बिकानन्द ने पूजा की। महाराज पूरे दिन आनन्द में भाव-विभोर रहे। यह एक अद्भुत अवसर था। उन्होंने ४ दिसम्बर, १९२० की शाम को बेलूड़ मठ के लिए प्रस्थान किया।[५२] **(क्रमशः)**

सन्दर्भ सूत्र – ३७. स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) लेखक-स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-३७९ और श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका (मराठी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द खण्ड-१, पृष्ठ-८३, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३१४ **३८.** रामकृष्ण मठ भुवनेश्वर : स्वामी ब्रह्मानन्देर तपोवन (उड़िया) प्रकाशक-रामकृष्ण मठ भुवनेश्वर पृष्ठ-९ और श्रीशंकरानन्देर गल्प कथा (बंगाली) प्रकाशक-समर साधन चौधरी बामुनमुडा पृष्ठ-११६ **३९.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अंग्रेजी) लेखक-ब्र.अक्षयचैतन्य, अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-१५३-१५४ **४०.** श्रीरामकृष्ण परिकर प्रसंग (बंगाली) लेखक- स्वामी कमलेश्वरानन्द पृष्ठ-२८ **४१.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अंग्रेजी) लेखक-ब्र. अक्षयचैतन्य, अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-१५४ **४२.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अंग्रेजी) लेखक- ब्र.अक्षयचैतन्य अनुवादक- स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-१५३-१५४ **४३.** मेडिटेशन एण्ड स्पिरिच्युअल लाईफ (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी यतीश्वरानन्द पृष्ठ-२१ **४४.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७९ और स्वामी शंकरानन्द (बंगाली) लेखक-डॉ.विश्वनाथ चक्रवर्ती पृष्ठ-९२-९३ **४५.** स्वामी ब्रह्मानन्द अॅज वी सॉ हिम (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी आत्मश्रद्धानन्द पृष्ठ-४७१ **४६.** स्वामी शंकरानन्द (बंगाली) लेखक-डॉ.विश्वनाथ चक्रवर्ती पृष्ठ-९२-९७ **४७.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-२१४-२१५, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक- उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३१६ **४८.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द लेखक-ब्र.अक्षयचैतन्य अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-३४-३५ **४९.** स्वामी ब्रह्मानन्द इन पिक्चर्स प्रकाशक-रामकृष्ण मठ बेलूड़ मठ पृष्ठ-८५ **५०.** स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३१८, रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अँग्रेजी) लेखक-ब्र.अक्षयचैतन्य, अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-२११ **५१.** स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा (बंगाली) लेखक-स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-७५-७६ **५२.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७९, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३१७

प्रश्नोपनिषद् (५७)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सांख्याः तु अविद्या-अध्यारोपितम् एव पुरुषे – कर्तृत्वं क्रिया-कारकं फलं च इति कल्पयित्वा-आगम-बाह्यत्वात्-पुनः-ततः-त्रस्यन्तः परमार्थतः एव भोक्तृत्वं पुरुषस्य इच्छन्ति, तत्त्व-अन्तरं च प्रधानं पुरुषात्-परमार्थ-वस्तुभूतम्-एव कल्पयन्तो-अन्य-तार्किककृत-बुद्धि-विषयाः सन्तो विहन्यन्ते।

परन्तु सांख्यवादियों की भूल यह है कि वे पहले तो पुरुष में अविद्या द्वारा अध्यारोपित क्रिया, कारक, कर्तृत्व तथा फल की कल्पना करते हैं; और फिर उसके वेदबाह्य होने के कारण उससे घबड़ाकर पुरुष के भोक्तृत्व को वास्तविक मानते हैं तथा प्रधान (प्रकृति) को पुरुष से भिन्न अन्य तत्त्व तथा पारमार्थिक वस्तु के रूप में कल्पना करते हैं। अत: वे अन्य तार्किकों की बुद्धि के विषय होकर नकार दिये जाते हैं।

तथा-इतरे तार्किकाः सांख्यैः। इति-एवं परस्पर-विरुद्धार्थ-कल्पनात आमिष-अर्थिन इव प्राणिनो-अन्योन्य-विरुद्धम्-अनार्थ-दर्शित्वाद्-दूरम् एव अप-कृष्यन्ते।

वैसे ही अन्य तार्किक भी सांख्य-मतवालों के द्वारा भ्रान्त हो जाते हैं। इस प्रकार वे विरुद्ध अर्थ की कल्पना करके, मांसलोभी प्राणियों के समान, एक-दूसरे के विरोधी अर्थ को देखने के कारण (वेदों में निरूपित परमार्थ तत्त्व से) बलपूर्वक दूर हटा दिये जाते हैं।

अतः तद्-मतम्-अनादृत्य वेदान्तार्थ-तत्त्वम्-एकत्व-दर्शनं प्रति आदरवन्तः मुमुक्षवः स्युः इति तार्किक-मत-दोष-प्रदर्शनं किञ्चित् उच्यते अस्माभिः न तु तार्किकवत्-तात्पर्येण।

यहाँ पर, हम उन लोगों के मत का अनादर करके दिखा रहे हैं, ताकि मुमुक्षुगण वेदान्त के तात्पर्य रूपी तत्त्व अर्थात् एकत्व-दर्शन के प्रति आदरयुक्त हों; इसी कारण हम तार्किकों के मत के थोड़े दोष दिखा रहे हैं; न कि तार्किकों के समान तात्पर्य के रूप में।

तथा-एतद्-अत्र-उक्तम् –

''विवदत्स्वेव निक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम्।
तैः संरक्षितसद्बुद्धिः सुखं निर्वाति वेदवित्।।'' इति।

इसलिये यहाँ पर कहा गया है – ''विरोध के उत्पन्न होने के कारण को विवादी लोगों पर ही छोड़कर, जिस वेदों के ज्ञाता ने अपनी सद्बुद्धि को (उनसे) सुरक्षित रखा है, वह सुखपूर्वक शान्त हो जाता है।''

किं च भोक्तृत्व-कर्तृत्वयोः विक्रिययोः विशेष-अनुपपत्तिः।

इसके सिवा भोक्तृत्व और कर्तृत्व इन दोनों विकारों में कोई अन्तर नहीं किया जा सकता।

का नाम-असौ कर्तृत्वात् जाति-अन्तरभूता भोक्तृत्व-विशिष्टा विक्रिया यतो भोक्ता-एव पुरुषः कल्पते न कर्ता, प्रधानं तु कर्तृ-एव न भोक्तृ-इति।

वस्तुत: भोक्तृत्व – क्या कर्तृत्व से भिन्न जाति का, कोई विशिष्ट विकार है? क्योंकि पुरुष तो भोक्ता ही माना जाता है, कर्ता नहीं; और प्रधान (प्रकृति) कर्ता मात्र है, भोक्ता नहीं?

शंका (सांख्यवादी) – ननु उक्तं पुरुषः चिन्मात्र एव स च स्व-आत्मस्थो विक्रियते भुञ्जानो न तत्त्व-अन्तर-परिणामेन। प्रधानं तु तत्त्व-अन्तर-परिणामेन विक्रियते; अतो-अनेकम् अशुद्धम् अचेतनं च-इत्यादि-धर्मवत्। तद्-विपरीतः पुरुषः।

हम तो पहले ही कह चुके हैं कि पुरुष चिन्मात्र ही है और वह भोग करते समय अपने स्वरूप में स्थित हुआ विकार को प्राप्त होता है। उसका विकार – भिन्न-तत्त्व-रूपी (अशुद्धियों से युक्त) परिणाम के द्वारा नहीं होता। जबकि प्रधान (प्रकृति) भिन्न-तत्त्व-रूपी परिणाम के द्वारा विकृत होता है। अत: वह (महत् आदि भेद से) बहुत्व, अशुद्धता तथा अचेतनता आदि गुणों से युक्त है; और पुरुष उसके विपरीत स्वभाववाला है। **(क्रमशः)**

चोवा, चन्दन, अरगजा वीथिन में रच्यौ है गुलाल

लक्ष्मीनारायण तिवारी

संस्थापक सचिव, ब्रज सांस्कृतिक अनुसन्धान संस्थान, वृन्दावन

होली विशेष

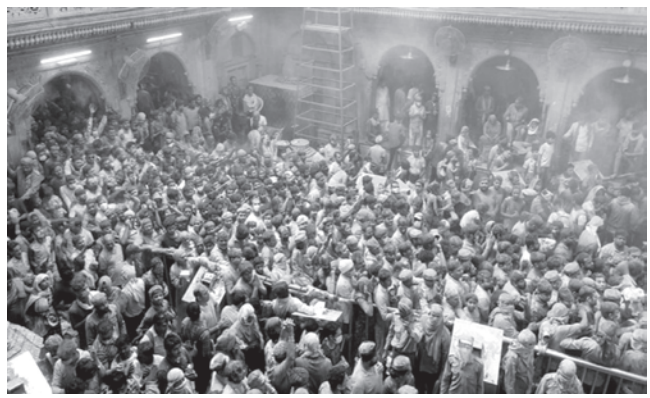

होली का त्यौहार हो और ब्रज का ध्यान न आये, ऐसा हो ही नहीं सकता। होली का ब्रज में विशेष महत्त्व है। इसीलिए होली और ब्रज एक दूसरे का पर्याय बन गये हैं। श्रीकृष्ण होली के नायक हैं और नायिका राधारानी हैं। राधा-कृष्ण की दिव्य होली प्रतिवर्ष ब्रज के देवालयों में जीवन्त हो उठती है, जिसे देखने के लिए प्रतिवर्ष हजारों तीर्थयात्री, भक्त एवं पर्यटक ब्रजभूमि में आते हैं।

ब्रज में होली का प्रारम्भ लगभग सवा माह पूर्व बसन्त पंचमी के दिन से ही हो जाता है। वैष्णव देवालयों में बसन्त पंचमी से ठाकुरजी के सन्मुख चाँदी के बटेरों में विभिन्न प्रकार के गुलाल रखे जाते हैं, जिन्हें दर्शनार्थियों पर छिड़का जाता है। फाल्गुन शुक्ला एकादशी से ब्रज के देवालयों में सर्वत्र गीले रंगों का डालना प्रारम्भ हो जाता है। फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन बरसाने में विश्व प्रसिद्ध लट्ठमार होली होती है, जिसके बाद मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर होली का आयोजन होता है। वृन्दावन में फाल्गुन शुक्ला एकादशी से धुलेण्डी तक होली होती है। इसके दूसरे दिन दाऊजी (बलदेव) का प्रसिद्ध हुरंगा होता है। ब्रज में होली का समापन वृन्दावन के रंगजी मन्दिर में होनेवाले ब्रह्मोत्सव की होली सवारी निकलने के उपरान्त ही होता है।

होली मूलत: रंगों का त्यौहार है। ब्रज के देवालयों में विशुद्ध प्राकृतिक रंगों के प्रयोग की परम्परा रही है। ब्रज के प्रमुख देवालयों में ठाकुरजी की सेवा में कैमिकल से बने कृत्रिम रंगों का प्रयोग अब तक नहीं होता है। होली से पूर्व देवालयों में पारम्परिक विधि से रंग तैयार किये जाते हैं। पारम्परिक और प्राकृतिक रंगों के नाम ब्रजभाषा की मध्यकालीन होली विषयक पद-पदावलियों में भी प्राप्त होते हैं।

वृन्दावन के श्रीधाम गोदा विहार मन्दिर स्थित ब्रज संस्कृति संस्थान में कई ऐसी दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ भी संग्रहित हैं, जिनमें होली के अवसर पर गाये जाने वाले विभिन्न ब्रजभाषा के पद संकलित हैं। जैसे –

सखी खेलत मोहन लाल हो, ब्रज होरी आई रसभरी।
चोबा, चंदन, अरगजा वीथिन में रच्यौ है गुलाल।।
संग सखा अति सोहने मधि नायक मोहन छैल।
टोकत रोकत वधुन कौं गौकुल में चलत न गैल।।
कर पिचकारी कनक की और फेंटन सुरंग अबीर।
चहुँ ओर रंग बहि चले चरचत रंग केसर नीर।।

परन्तु आज अधिकांश लोगों को इन प्राकृतिक रंगों के विषय में जानकारी नहीं है। इन रंगों को बनाने में उत्तम कोटि के सुगन्धित द्रव्यों और पुष्पों का उपयोग होता था। यह रंग शरीर व त्वचा के लिए हानिरहित होते हैं। देवालयों की होली में प्रयोग होनेवाले निम्नलिखित प्रमुख रंग हैं –

टेसू के फूलों का रंग

पलाश को ब्रज में, 'टेसू' या 'ढाक' कहा जाता है। फाल्गुन-चैत्र मास में होली के समय इसके वृक्ष पर फूल खिलते हैं, इन फूलों को पानी में उबाल कर पीला रंग तैयार किया जाता है। फूलों को पानी में उबलते समय थोड़ा चूना डाल देते हैं, जिससे यह रंग चटख बसन्ती हो जाता है। रंग के ठण्डा होने पर इसे छान कर बड़े-बड़े कलशों में भर

लिया जाता है। होली के अवसर पर चाँदी और सोने की पिचकारियों और कमोरी में भरकर इस रंग को दर्शनार्थियों के ऊपर छिड़का जाता है। कमोरी एक प्रकार का पात्र होता है, जिसका प्रयोग होली में रंग भरकर डालने के लिए किया जाता है।

केसर – केसर एक प्रकार का सुगन्धित व महंगा द्रव्य है, जो फूलों में से निकाला जाता है और कश्मीर में उत्पन्न होता है। इसे पानी या दूध में घोलकर सोने जैसा पीला रंग तैयार किया जाता है। यह रंग कुछ लालिमा लिए हुए होता है। होली के दिनों में केसर का रंग चाँदी के कटोरों में भरकर ठाकुरजी के समक्ष रखा जाता है। केसर का प्रयोग रंग बनाने के अलावा ठाकुरजी के पंचामृत, तिलक, अंगराग, मिष्ठान्न आदि में भी होता है।

चन्दन – चन्दन पेड़ की लकड़ी से प्राप्त होता है। यह लाल, सफेद तथा पीले रंग का होता है। चन्दन के पेड़ दक्षिण भारत में कर्नाटक तथा नीलगिरि पर अधिक होते हैं। मलयगिरी का चन्दन विशेष रूप से प्रसिद्ध है। चन्दन अपनी अत्यधिक सुगन्ध और शीतलता के कारण पानी में घिसकर शरीर पर लगाने के काम आता है। होली के अलावा चन्दन ठाकुरजी के तिलक, अंगराग में भी प्रयुक्त होता है।

चोवा – चोवा एक काले रंग का सुंगधित तेल होता है। यह चन्दन और अगर के तेल व गोंद तथा मरसे के फूलों को मिलाकर और गरम करके बनता है। होली के अवसर पर इसे छिड़का जाता है। इससे कपड़ों पर काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। होली के अलावा चोवा का प्रयोग चन्दन श्रृंगार (अक्षय तीज) के समय देव-विग्रहों पर लेपन के लिए होता है। चोवा के लेपन के बाद ही देव-विग्रहों पर चन्दन की पर्त चढ़ाई जाती है।

रोली – रोली या कुमकुम गहरे लाल रंग का बारीक चूर्ण होता है। जो चूना और हल्दी के सम्मिश्रण से तैयार होता है। होली खेलने के अलावा इसका प्रयोग तिलक आदि में भी होता है।

अबीर – अबीर अबरक/अभ्रक के चूर्ण से बनता है। जिसे ब्रज में 'भुड़भुड़' भी कहते हैं। यह अत्यन्त चमकीला पदार्थ होता है, जिसे गुलाल में भी मिलाया जाता है।

गुलाल – होली में सूखें रंग के रूप में गुलाल का प्रयोग सर्वाधिक होता है। गुलाल अरारोट में गुलाबी, लाल, पीला, हरा आदि रंग मिलाकर तैयार किया जाता है।

कुमकुम – कुमकुम गुलाल व रंगों से भरी हुई लाख की गेंद होती थी, जिसे किसी व्यक्ति विशेष की ओर फेंककर मारते थे। शरीर से टकरा कर इसके रंग बिखर जाते थे।

अरगजा – अरगजा अगर वृक्ष की लकड़ी का तेल, गेहला, बनफशा, गुलाब, चन्दन तथा कपूर आदि के मिश्रण से बना सुगन्धित पीले रंग का शीतलता प्रदान करनेवाला तेल है। जिसका प्रयोग देवालयों में होली खेलने के लिए किया जाता है।

ये प्राकृतिक रंग देवालयों की होली को दिव्यता प्रदान करते हैं। देश-विदेश से आनेवाले हजारों तीर्थयात्री व पर्यटक ब्रजवासियों के संग इन रंगों में भींगकर अपने आप को बड़भागी मानते हैं। भक्तजनों को इन रंगो में भींगकर भी तृप्ति में अतृप्ति की अनुभूति बनी रहती है। होली के अवसर पर ब्रज के देवालयों में रस उमड़ पड़ता है। ब्रजराज श्रीकृष्ण और राधिका रानी के साथ होली खेलने का यही अवसर होता है, इसे कौन छोड़ना चाहेगा ! भक्त और भगवान होली के रंगों में भींगकर एकरंग हो जाते हैं। तन-मन की सारी ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। धन्य हैं ब्रज के ठाकुर, दिव्य है उनकी होली और अद्‌भुत हैं उनके ये रंग ! ○○○

कविता

ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया

डॉ. अनिल कुमार फतेहपुरी, गया, बिहार

खेलत होली गिरिवरधारी, संग लिये बृषभानकुमारी ।
मुरली मधुर बजायो रसिया, ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया।।
ग्वाल बाल मारत किलकारी, सब मिलि नाचत दै दै तारी ।
रूप बिचित्र बनायो रसिया, ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया।।
गोपी जन मारत पिचकारी, सब सखियन मिलि बाँचत गारी ।
अद्भुत रास रचायो रसिया, ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया ।।
मुनि जन निशिदिन ध्यान लगावत, हुलसि-हुलसि माधव जस गावत।
तिन्ह कहुँ मन भरमायो रसिया, ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया।।
उड़त गुलाल लाल भयो बादल, जड़-चेतन के मानस जागल ।
कौतुक परम दिखायो रसिया, ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया।।

श्रीरामकृष्ण-गीता (४४)

(आठवाँ अध्याय ८/७)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

श्रीरामकृष्ण उवाच

संसारादियशोमानैरभिमानैश्च यन्मनः।
आक्रान्तं गुरुभावैस्तैर्निमग्नं भवतीश्वरात्।।३६।।

– जिसका संसारादि यश, प्रतिष्ठा, अभिमान का भार अधिक होता है, उसका मन भगवान से उठकर नीचे अर्थात् संसार में झुक जाता है।

यस्तु विवेकवैराग्य-भगवद्भक्तिभारवत्।
धावत्युत्क्षिप्य संसारात्त्वरितमीश्वरं प्रति।।३७।।

– जिसका विवेक, वैराग्य और भगवद्भक्ति का भार अधिक होता है, उसका मन संसार से ऊपर उठकर भगवान की ओर झुक जाता है।

अभिषिच्य दिनं सर्वं जनैकः क्षेत्रपालकः।
आजगाम स सायाह्ने द्रष्टुं तस्येक्षुवाटिकाम्।।३८।।

– एक किसान दिन भर खेत में जल छोड़कर दिन के अन्त में अपना ईंख का खेत देखने गया।

बिन्दुजलञ्च नागच्छत्तत्र तत्र क्षेत्रिक ऐक्षत।
कैश्चिद्दूरैः स्थितैश्छिद्रैः सर्वमन्यत्र निर्गतम्।।३९।।

– उस किसान ने जाकर देखा कि एक बूँद जल भी खेत में नहीं रुका। दूर में कुछ छेद थे, उससे सभी जल बाहर निकल गया।

तथैहिक यशोमान-विषयवासनादिषु।
सन्निधाय मनस्तेषु यो वै करोति साधनम्।।४०।।
साधकोऽन्ते निरीक्षेत भूत्वा भग्नमनोरथः,
सिञ्चत् क्षेत्रिकवत् क्षेत्रं सविवरमनुक्षणम्।
गर्तेस्तैर्वासनारूपेरखिलं साधनं गतम्।।४१।।

– उसी प्रकार जो विषय-वासना आदि, सांसारिक यश और सम्मान-गौरव की ओर मन रखकर साधना करते हैं, अन्त में वे साधक निरन्तर खेत की सिंचाई करनेवाले किसान के समान देख पाते हैं कि इन वासना रूपी छेदों से उनकी साधना निकल गयी है।

सुदृढं बालकः स्थाणुमालम्ब्यैकेन पाणिना।
सवेगं घूर्णते यद्वत् सकृदपि बिभेति न।।४२।।
निबद्धं तु मनस्तस्य स्थाणूपरि सदैव हि।
यतः सोऽवहितः सम्यक् स्थानोः त्यक्ते च्युतो भवेत्।।४३।।

– बालक जैसे एक हाथ से दृढ़ता से खूँटा पकड़कर दन-दनाकर घूमता रहता है, बिल्कुल ही नहीं डरता है, किन्तु उसका मन सदा खूँटे पर पड़ा रहता है, क्योंकि वह जानता है कि खूँटा छोड़ते ही वह गिर जायेगा।

कुर्यात्तथेह कर्माणि निबध्य मन ईश्वरे।
मनस्त्वस्तु सदा तस्मिन्नापन्मुक्तस्ततो भवेत्।।४४।।

– इस संसार में भी उसी प्रकार भगवान की ओर मन रखकर सभी कार्य करो, किन्तु मन सर्वदा उनकी (भगवान की) ओर रहे, तब संकटमुक्त रहोगे।

धर्म कर्म चरन्त्येके संसारसुखहेतवे।
तद्विस्मरन्ति दुर्दैवे विनाश आगतेऽथवा।।४५।।

– संसार में सुख के लोभ में कई लोग धर्म-कर्म करते हैं, किन्तु दुर्दिन में अर्थात् थोड़ा कष्ट होने पर अथवा मृत्यु के समय वे सब कुछ भूल जाते हैं।

किंकिरातो यथाचष्टे राधाकृष्णेत्यहर्निशम्।
स्वभावजं रवं रौति तद्विस्मृत्योऽतुना धृते।।४६।।

– जैसे तोता दिन-रात 'राधाकृष्ण' ऐसा कहता है, किन्तु जब बिल्ली पकड़ती है, तब राधाकृष्ण भूलकर टें, टें करता रहता है।

न कश्चिद्विद्यतेऽपायो नो सलिले स्थिता यदि।
जलं चेत् प्रविशेन्नावं निमग्नासौ भवेत्तदा।।४७।।

– यदि जल में नौका रहे, तो कोई क्षति नहीं है, किन्तु यदि नौका में जल प्रवेश करे, तो नौका डूब जायेगी।

स्यात् साधकोऽपि संसारेऽनर्थोऽत्र नास्ति कश्चन।
कदा संसारभावस्तु मा भूत् साधकमानसे।।४८।।

– उसी प्रकार साधक संसार में रहे, इससे कोई क्षति नहीं है, किन्तु साधक के मन में संसार का भाव न रहे।

(क्रमशः)

व्याकुल योग

नवीन चन्द्र मिश्र, जमशेदपुर, झारखण्ड

ईश्वर चिन्तन के मार्ग में व्याकुल होने की आवश्यकता होती है। सही में देखा जाये, तो व्याकुलता किसी भी स्वअर्जित उपलब्धि के लिए आवश्यक है। श्रीरामकृष्ण एवं उनके शिष्यों ने इस पर चर्चा और मार्गदर्शन किया है। उन्होंने निजी जीवन में भी कार्यान्वित कर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी विषय पर थोड़ी चर्चा करने का प्रयास करता हूँ।

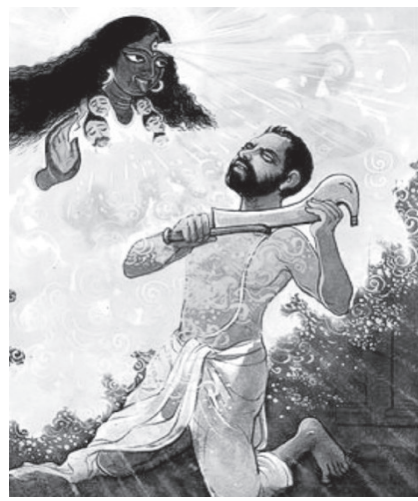

व्याकुल का शाब्दिक अर्थ व्यग्र, कातर है। उदाहरण के लिए रेगिस्तान में प्यासा जल के लिए व्यग्र होता है। आजीविका हेतु बेरोजगार व्यक्ति कातर भाषा में नौकरी के लिए आवेदन देता है। जब इन दैनिक चीजों के लिए व्याकुल होना पड़ता है, तो क्या ईश्वर बिना प्रयास और परिश्रम के मिल जाएँगे? श्रीरामकृष्ण देव ने इस सन्दर्भ में एक कहानी सुनाई। किसी ने पूछा, 'ईश्वर किस तरह मिलेंगे?' तब गुरु ने कहा ''मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें दिखलाता हूँ, किस तरह की अवस्था में ईश्वर मिलते हैं।'' यह कहकर गुरु ने एक तालाब में ले जाकर उसे डुबो दिया और ऊपर से दबाकर रखा, फिर कुछ देर बाद उसे छोड़कर पूछा ''कहो तुम्हारे प्राण कैसे हो रहे थे?'' उसने कहा ''प्राण छटपटा रहे थे, मानो अब निकलते ही हों।'' श्रीरामकृष्ण ने आगे कहा ''ईश्वर के लिए प्राणों के छटपटाते रहने पर समझना कि अब दर्शन में देर नहीं है। अरुणोदय होने पर, पूर्व में लाली छा जाने पर समझ पड़ता है कि अब सूर्योदय होगा।''[१] अब प्रश्न यह उठता है कि क्या व्याकुलता स्वत: आएगी या मनुष्य के प्रयास से होगी? इसके लिए कहा गया है कि निरन्तर ईश्वरनाम, साधुसंग इत्यादि से व्याकुलता उत्पन्न होगी। हम कुछ ऐसे भी उदाहरण देखेंगे, जब भक्त के व्याकुल होने पर गुरु उन्हें स्वयं दीक्षा देने हेतु आए और आगे का मार्ग प्रशस्त किया।

महाराष्ट्र में जन्मे सूरज राव (आगे चलकर स्वामी निश्चयानन्द) चेन्नई के पास एक गाँव में रह रहे थे। स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से वापसी के समय ट्रेन द्वारा उधर से जाने वाले थे। उनके दर्शन हेतु ग्रामवासियों ने स्टेशन मास्टर से ट्रेन रोकने की बहुत विनती की परन्तु असफल रहे। अन्त में हारकर सैकड़ों ग्रामीण रेल की पटरी पर बैठ गए और गार्ड को ट्रेन रोकना ही पड़ा। ग्रामवासियों ने स्वामीजी के डिब्बे को घेर लिया। स्वामीजी ने दरवाजे पर आकर सबको दर्शन दिए और आशीर्वाद दिया। रावजी के लिए स्वामीजी का यह प्रथम दर्शन था।

रावजी को इस दर्शन से तृप्ति न हुई। वे एक क्षत्रिय, सेवारत सैनिक थे और किसी अवरोध को माननेवालों में से न थे। उन्होंने चेन्नई जाकर मिलने का निश्चय किया। रुपयों के अभाव के कारण वे पैदल ही समुद्र के किनारे-किनारे चल पड़े। रास्ते चलते यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि मछुआरे भी स्वामीजी की सफलता से अवगत थे। अगले दिन सात बजे वे चेन्नई में विवेकानन्द ईलम् पहुँचे।

दर्शन के लिए लम्बी कतार थी। पाँच घण्टे बाद रावजी स्वामीजी के पास पहुँचे। अवरुद्ध कण्ठ और बहती अश्रुधारा इस अवस्था में वे स्वामीजी के पास बैठ गए। भीड़ छँटने के बाद स्वामीजी ने उनके बारे में जिज्ञासा की और उनके भोजन का प्रबन्ध करवाया। रावजी ने कातर स्वर में स्वामीजी से अपने साथ रखने और संन्यास के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने तत्काल मना करते हुए उन्हें कलकत्ता में मिलने के लिये कहा।

इस घटना के उपरान्त रावजी सेना की नौकरी छोड़ना चाहते थे, जो कि आसान नहीं था। उनकी कार्य के प्रति उदास मनोवृत्ति को अधिकारियों ने मानसिक असन्तुलन

समझकर सेवा से निवृत्त किया। यह सब १९०१ की घटना है, जब स्वामीजी अस्वस्थ थे। बेलूड़ मठ में एक दिन स्वामीजी को सूचना मिली की एक मराठी व्यक्ति उनसे मिलना चाहते हैं। उन्होंने कहलवाया कि आगन्तुक स्नान, भोजन इत्यादि कर लें, उसके उपरान्त मिलेंगे। रावजी ने कहा कि वे स्नान एवं भोजन के लिये नहीं आये हैं। जब तक उनके दर्शन न मिलेंगे, तब तक वे स्नान या भोजन न करेंगे। इस पर स्वामीजी आए और रावजी से उनके आने का प्रयोजन पूछा। रावजी ने उनकी सेवा करने की इच्छा प्रकट की और स्वामीजी ने उन्हें मठ में रहने की अनुमति दे दी। यहाँ व्याकुलता प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं।[२]

कुछ दिनों बाद स्वामीजी ने उन्हें संन्यास दीक्षा दी और वे उसके बाद स्वामी निश्चयानन्द कहलाये। स्वामी निश्चयानन्द ने कनखल सेवाश्रम में अभूतपूर्व योगदान दिया। २२ अक्तूबर, १९३४ को उनकी महासमाधि हुई। उनके गुरु-भाई स्वामी कल्याणानन्द जी ने उनके विषय में कहा था, ''इतिहास में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति मिलेगा, जो बिना अवकाश लिये जीवन के अन्तिम दिनों तक लगातर तीस वर्षों से सेवा किया हो।'' उनका जीवन निष्काम कर्म का उदाहरण है।[३]

भक्त की व्याकुलता के साथ गुरु की शिष्य के प्रति व्याकुलता के भी उदाहरण मिलते हैं। दोनों की व्याकुलता को भक्ति की पराकाष्ठा ही कह सकते हैं।

जनवरी, १९४५ में स्वामी विरजानन्द (संघ के छठवें अध्यक्ष) तत्कालीन पूर्व बंगाल (अभी का बांग्लादेश) के सिलहट में थे। करीमगंज के एक पुराने भक्त विशेष समस्या के साथ उपस्थित हुए। उनकी बीमार पत्नी मन्त्र-दीक्षा के लिये व्यग्र थीं, किन्तु वे सिलहट आने में असमर्थ थीं। पचास मील दूर से आना उनके लिए असम्भव था। स्वामी विरजानन्द जी ने भक्त से कहा – 'मैं तुम्हारे घर जाऊँगा और उनकी मनोकामना पूरी करूँगा।'' करीमगंज पहुँचकर संघगुरु मृत्युशय्या पर लेटी महिला के बगल में कुर्सी पर बैठे। स्वामीजी ने कहा – माँ मेरे साथ उच्चारण करो ...।'' मृत्यु शय्या पर लेटी शिष्या ने तीन बार मन्त्रोच्चारण किया। वह गुरु के चरण छूकर आशीर्वाद लेने की स्थिति में न थी। गुरु ने स्वयं अपने पैरों को अपने हाथ से छूआ और महिला के सिर पर आशीर्वाद हेतु रखा। यह गुरु-शिष्य; दोनों की व्यग्रता का अभूतपूर्व उदाहरण है।[४]

दुर्गाचरण नाग (नाग महाशय) श्रीरामकृष्ण देव के श्रेष्ठ गृहस्थ भक्तों में जाने जाते हैं। कलकत्ता में रहते समय वे दीक्षाग्रहण के लिये व्याकुल हो गये। गुरु कहाँ मिलेंगे और मन्त्र कौन देंगे, यही दिन-रात सोचते रहते थे। एक दिन कुमारटोली के घाट पर स्नान करते समय उन्होंने देखा कि एक छोटी-सी नाव चली आ रही है। उन्होंने देखा कि उनके कुलगुरु वंगचन्द्र भट्टाचार्य नाव में हैं। स्नानोपरान्त नाग महाशय ने कुलगुरु से आने का प्रयोजन पूछा। उत्तर मिला – 'बेटा, महामाया की आज्ञा से तुम्हें मन्त्र-दीक्षा देने के लिए ही मैं आज यहाँ आया हूँ।' कुलगुरु को देखकर नाग महाशय के पिता दीनदयाल भी खुश हुए। नाग महाशय सपत्नीक शक्ति मंत्र से दीक्षित हुए।[५]

क्या नाग महाशय के कुलगुरु का अचानक आना एक संयोग था? मानव जीवन, मुक्ति की इच्छा और महापुरुषों का सान्निध्य, तीनों वस्तुयें नाग महाशय के पास थीं। यहाँ भी गुरु-शिष्य दोनों की व्यग्रता देखने को मिलती है।

रामकृष्ण संघ के द्वादश अध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने परामर्श दिया है – दीक्षा लेने के पहले व्यक्ति को मनरूपी जमीन तैयार कर लेनी चाहिए। जमीन तैयार किए बिना ही यदि हम बीज बो दें, तो वह व्यर्थ चला जाएगा। अत: पहले खाद आदि डालकर जमीन तैयार कर लेना चाहिए और तभी बीज बोने से अच्छी फसल की आशा की जा सकती है। अत: हमें यह बात जान लेनी होगी कि दीक्षा के लिए तैयारी आवश्यक है।[६]

नाग महाशय बचपन से ही सत्यवादी थे। सत्यवादी होने के कारण उनकी पिटाई भी हुई थी। साधुसंग एवं ब्रह्मज्ञान के लिए उनकी तीव्र इच्छा भी थी। उनका खेत तैयार था।

भक्तों के लिए सीख है कि अगर सत्यनिष्ठ रहें, साधु संग करें और अनुचित आचरण से बचें, तो मार्ग स्वत: प्रशस्त होना निश्चित है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री 'म'), श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, अनुवाद सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', परिच्छेद १३३, पृष्ठ ११२७ **२.** स्वामी अब्जजानन्द, Monastic Disciples of Swami Vivekananda पृष्ठ २५७-२६० **३.** वही, पृष्ठ २७१ **४.** स्वामी श्रद्धानन्द, The Story of An Epoch Swami Virajananda and His Times पृष्ठ २५९ **५.** शरतचन्द्र चक्रवर्ती, साधु नाग महाशय, अनुवाद द्वारकानाथ जी तिवारी, पृष्ठ ३३-३४ **६.** स्वामी भूतेशानन्द, गुरु और मंत्रदीक्षा, अनुवाद स्वामी विदेहात्मानन्द, पृष्ठ ३३

गीतातत्त्व-चिन्तन

तेरहवाँ अध्याय (१३/५)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १३वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

संसार का प्रवाह किस प्रकार

यहाँ यह बताया गया है कि कैसे वह ब्रह्म अपने-आपको अनेक रूपों और नामों में प्रकट करता है। यह सिद्धान्त की बात है कि एक वही ब्रह्म-तत्त्व संसार में व्याप्त है। वह एक अरूप और निर्गुण इस प्रकार से रूपवान और गुणवान बन जाता है। इसकी प्रक्रिया हमें बड़ी विचित्र मालूम पड़ती है कि जहाँ सिद्धान्त की दृष्टि से केवल एक ही तत्त्व है, वह तत्त्व नाना प्रकार के रूप कैसे धारण करता है, यह बात समझना कठिन लगता है। हमें लगता है कि यह जो इतने नाम और रूप दिखाई देते हैं, वे मिथ्या कैसे हो सकते हैं? शास्त्रों ने कहा कि रूप मिथ्या है। इसका तात्पर्य केवल इतना है कि अभी जो रूप हमें दिखाई देता है, वह रूप उस समय के लिए तो अवश्य दृश्यमान है, पर जिस समय वह रूप मिट जाता है, उसके बाद उस रूप को कभी भी हम ग्रहण कर नहीं सकते। मेरा कोई मित्र यदि मेरे साथ रहता है, उठता-बैठता, खाता-पिता है। यदि वह मर जाए, तो मैं किसी भी उपाय से वापस उसका रूप देख नहीं सकता। यह जो स्थिति है, उसको शास्त्रों ने मिथ्या के नाम से पुकारा है।

मिथ्या का अधिक व्यावहारिक अर्थ करना चाहें, तो उसको हम अनित्य कह सकते हैं। अनित्य वह है, जो कुछ समय के लिए दिखाई देता है, फिर कहाँ जाता है, कुछ पता ही नहीं चलता। जैसे एक रूप अदृश्य हो गया, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न रूप अदृश्य होते रहते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ से न जाने कितने रूप सामने आए और कितने नष्ट हो गये। नष्ट हुए रूपों का तो कुछ पता नहीं चलता और जो नहीं जाने हुए हैं, ऐसे कई रूप आकर सामने खड़े हो जाते हैं। इसको हम जन्म और मृत्यु का प्रवाह कहते हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जो रूप अब दिखाई नहीं देते, वे कहाँ चले गए?

जिन रूपों की इतनी सत्ता दिखाई देती थी, वे अन्ततः कहाँ जाकर मिल गए? हम कहें कि वे मृत्यु के कराल के गाल में समा गए, तो यह तो हमने होनेवाली घटना को बता मात्र दिया, उसका स्पष्टीकरण नहीं किया। यही सब हमें समझाने के लिए शास्त्र लिखे गए हैं। उन्हें पढ़कर हम समझ लें, जान लें तो हमारा विवेक बढ़ेगा, हमारी धृति बढ़ेगी। विवेक के बढ़ने से हम मृत्यु के आघात को सहने में समर्थ हो जाएँगे।

विवेक के माध्यम से संसार-प्रवाह से मुक्ति

बर्ट्रेण्ड रसेल दो बातें कहते हैं। उन्होंने एक बात तो knowledge के सम्बन्ध में कही और दूसरी wisdom के सम्बन्ध में। वे जड़वादी थे। ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते थे। फिर भी देखिए उनका चिन्तन कितना प्रगल्भ है, कितना सत्य है ! उपनिषदों ने जैसा चिन्तन किया है, ठीक वैसा ही चिन्तन बर्ट्रेण्ड रसेल के जीवन में भी होता है। एक पुस्तक में उनका लेख छपा है – The impact of science on society। उस लेख में वे दो शब्दों का प्रयोग करते हैं – 1. Knowledge 2. Wisdom. उनका कहना है कि knowledge के कारण मनुष्य के पास शक्ति तो आई है,

पर उसका दु:ख भी बढ़ा है। उनका कहना है कि दु:ख को दूर करने या उस पर नियन्त्रण पाने में केवल wisdom ही समर्थ है। इसलिए वे यह तर्क देते हैं कि हमें wisdom की ही कमाई करनी चाहिए। वे लिखते हैं कि आज हम अपने को दो छोरों के बीच में पाते हैं। १. मानवीय कुशलता २. मानवीय मूर्खता। आज विज्ञान की सहायता से मनुष्य बहुत कुशल हो गया है। विज्ञान की सहायता से तरह-तरह के औजार बना लेता है। दूसरी ओर मानव की मूर्खता यह है कि वह नहीं जानता कि किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह वे औजार बना रहा है और इसी मानवीय मूर्खता के कारण यह संसार मुश्किलों से घिरा हुआ है। ज्ञान में शक्ति है, पर वह अच्छे के लिए भी प्रयुक्त हो सकती है और बुरे के लिए भी। भौतिक जगत् से हम जो सीखते हैं, जो ज्ञान अर्जित करते हैं, उसको तो उन्होंने knowledge कहा और wisdom की परिभाषा बताते हुए वे सच्चे अर्थों में वेदान्त के दार्शनिक बन जाते हैं। वे कहते हैं wisdom का सार मुक्ति में है। यथासम्भव मुक्ति। जितनी मुक्ति तुम्हें मिल सके, अपने आपको उतना मुक्त कर लो। देश और काल का बन्धन मनुष्य को सताता है। उसी से यथासम्भव मुक्ति पानी है। यही दर्शन वेदान्त और उपनिषद् हमारे सामने लाते हैं। wisdom को हम विज्ञान की प्रक्रिया से नहीं पा सकते। स्वयं बर्ट्रेण्ड रसेल ने बताया कि मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर ही wisdom पाया जा सकता है। स्वार्थकेन्द्रित रहने पर उसका wisdom जाग्रत नहीं होता। दूसरों के दु:ख में दु:खी होने पर हमारे wisdom की मात्रा बढ़ती है।

शास्त्रों को पढ़कर हम अपने मन के भीतर क्षमता का निर्माण करना चाहते हैं। देश और काल का घेरा, जिसमें हम बन्दी बने बैठे हैं, उससे निकलने की क्षमता हमें उनसे मिलती है। मन को वश में रखने के लिए जो युद्धविद्या सीखनी आवश्यक है, वही सिखाने के लिए भगवान अर्जुन को क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान देते हैं। आध्यात्मिक जीवन में मन के साथ संग्राम करने के लिए मन का स्वभाव तो जानना ही पड़ेगा। भगवान ने तो यहाँ तक कह दिया कि ये जितने शास्त्र हैं, ऋषियों की जितनी अनुभूतियाँ हैं, वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विश्लेषण तक सीमित हैं। वे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को अलग-अलग हमारे समक्ष रख देते हैं और यदि हम दोनों को अलग-अलग से समझ लें, तो उनका काम पूरा हो जाता है। इसका एक बार ज्ञानात्मक बोध ही हो जाए, तो धीरे-धीरे वही अनुभवात्मक बोध बन सकता है। शरीर और मन मिलकर काम करते हैं, इसलिए उन्हें अलग-अलग जानना कठिन हो जाता है। किसी बात को बार-बार दुहराया जाए, तो वह समझ में आने लगती है। इसीलिए शास्त्रों में बातों को बारम्बार दुहराया जाता है।

हम यदि सोचें कि भगवान के पास क्या कोई दूसरी बात ही कहने के लिए नहीं है? वे इसी बात को बार-बार दुहराए जा रहे हैं? शंकराचार्य अपने भाष्य में लिखते हैं कि यह विषय ही ऐसा दुरूह है कि बार-बार बताकर समझाना पड़ता है। ब्रह्मतत्त्व के बारे में बताया गया, जिसको हम भक्ति की भाषा में ईश्वर कहकर पुकारते हैं, वह संसार में सर्वव्यापी है। अब यह जो ब्रह्म है, इसका कोई रूप नहीं, कोई नाम नहीं। पहले हमने बताया था कि इसका एक रूप होता है, जो सीमा में बँधा हुआ होता है। यदि यह सीमा में बँधा हुआ नहीं रहता, तो इसका कोई रूप नहीं होता। यह सब जगह सबमें व्याप्त रहता। अब यह अरूप तत्त्व इस संसार के रूप में कैसे आता है? इसी को सृष्टि के क्रमविकास या सृष्टि के विस्तार के नाम से जाना गया।

वेदान्तिक क्रमविकास की धारणा

वेदान्त और सांख्य दो ऐसे दक्ष शास्त्र हैं, जो इस विषय पर विशद विचार करते हैं और हमारे समक्ष इस सृष्टि-विस्तार के क्रम को रखते हैं। वेदान्त और सांख्य के विचारों में थोड़ा-सा अन्तर है। उस अन्तर के विषय में हमें नहीं सोचना है। अब ब्रह्म जो अरूप है, उसमें से यह सारा रूप पसारा कैसे निकलता है? उदाहरण के लिए (१) कपूर से आप भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियाँ बना लीजिए। कुछ समय में धीरे-धीरे वह कपूर उड़ जाता है और आकृतियों का कोई अस्तित्व नहीं रहता। वह जो ठोस पदार्थ दिखाई दे रहा था, वह कहाँ चला गया? (२) बर्फ ठोस होता है। उसे किसी बर्तन में रखिये, तो कुछ समय में उसका रूप जल हो जाएगा और बाद में जल भी नहीं रहेगा, भाप बनकर उड़ जाएगा।

इस तरह सिद्ध हो जाता है कि कपूर और बर्फ भी अरूप हैं और ठोस रूप धारण कर लेते हैं। कैसे धारण करते हैं, इसकी प्रक्रिया शास्त्रों ने बताई। उसी को सृष्टि का क्रम-विकास कहते हैं। सृष्टि के विस्तार की पद्धति शास्त्र बता देते हैं कि किन वस्तुओं से किस तरह यह रूप निर्मित होता

है। फिर कैसे क्रमशः नष्ट हो जाता है, अदृश्य हो जाता है।

ब्रह्म सर्वशक्तिमान है। उनकी शक्ति को माया कहते हैं। जैसे अग्नि की शक्ति है, उसकी जलाने की ताकत। आग को आप उसकी जलाने की ताकत से कभी अलग नहीं कर सकते। उसके बिना आग आग ही नहीं रह जाएगी। इसी तरह सृजन, पालन, संहार करने की शक्ति सदा ब्रह्म के साथ रहती है और उस शक्ति को हम माया कहते हैं। तो ब्रह्म अपनी माया शक्ति से विश्व का सृजन करता है, यह बात शास्त्रों में बारम्बार आती है। इस क्रिया का क्रम भी बताते हैं। सृष्टि करने की इच्छा (तितिक्षा) से ब्रह्म माया की ओर ईक्षण (दृष्टिपात) करता है। उसकी उस कामना से ही सृष्टि का प्रारम्भ होता है। माया ब्रह्म की शक्ति तो है, पर ब्रह्म हर समय उसका उपयोग नहीं करता। जिस समय उसे बाजीगरी दिखानी होती है, इन्द्रजाल फैलाना होता है, उस समय वह उसका उपयोग करता है। ब्रह्म मन में खेल दिखाने का विचार करता है, तो उसके सामने सृष्टि की परिकल्पना आ जाती है और उसे प्रकट करने के लिए वह माया का स्मरण करता है। वह अदृश्य शक्ति (माया) यहाँ अरूप (ब्रह्म) से कई प्रकार के रूपों को प्रकट करती है।

स ऐक्षत। स अकामयत। एकोऽहं बहु स्याम्। उसने देखा! उसने कामना की कि मैं अकेला हूँ। बहुत रूपों में अपने-आपको प्रकट करूँ। ब्रह्म की यह कामना अहंकार कहलाती है। गीता के ये शब्द इसी दृष्टि से हमें समझना है। इसी तरह अव्यक्त शब्द का यहाँ यह अर्थ है कि ब्रह्म की शक्ति जो माया है, वह सदा ब्रह्म के साथ ही रहती है, पर हर समय जाग्रत नहीं रहती। कभी-कभी विशेष कारणों से ही जाग्रत होती है, अन्यथा अव्यक्त रहती है। उसी के लिए यह अव्यक्त शब्द है। सृजन की कामना से ब्रह्म जो माया की ओर देखता है, वही उसका देखना ही बुद्धितत्त्व के रूप में या महत्तत्त्व के रूप में प्रकट हो जाता है। उसे ही कहते हैं – बुद्धि। ब्रह्म के अहंकार से जो तन्मात्रा उत्पन्न होते हैं, उनको यहाँ महाभूत कहा गया। आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश में कम्पन्न हुआ, तो वायु उत्पन्न हुई। वायु की तीव्र गति से अग्नि उत्पन्न हुई, तेज उत्पन्न हुआ। वह जल के रूप में परिवर्तित हुआ और अन्त में वही पृथ्वीतत्त्व के रूप में पैदा हुआ। ये ही पाँच सूक्ष्म तन्मात्राएँ हैं, जिनको यहाँ पर पञ्चमहाभूत कहकर पुकारा गया। ये तत्त्व सभी जगह हैं, सर्वव्यापी हैं। इसीलिए इनको महाभूत कहा गया। तन्मात्र का अर्थ है – तत् मात्र। उसी स्थिति में वह - energy स्वरूप है। अभी उसका किसी प्रकार का भी - combination नहीं हो पाया है। इसी को शास्त्रों में पञ्चीकरण की क्रिया कहते हैं। यह संसार जो उत्पन्न हुआ है, वह पञ्चीकरण से हुआ। जब तक ये पाँचों सूक्ष्म तन्मात्राएँ अपञ्चीकृत रहती हैं, तब वे सूक्ष्म महाभूत कहलाती हैं और जब आपस में मिलकर एक स्थूल महाभूत की रचना कर लेती हैं, वह उनकी बाद की स्थिति है। उस स्थूल महाभूत में सब इन्द्रियाँ व उन इन्द्रियों के विषय पैदा होते हैं। उसको पञ्चीकरण की क्रिया कहते हैं। सुनने में यह सब बहुत कठिन मालूम होता है, जबकि कठिन है नहीं। हमें कठिन इसलिए लगता है कि हमने बारम्बार उसमें प्रवेश करके उसका चिन्तन-मनन नहीं किया है।

किसी तालाब में जैसे बार-बार प्रवेश करके उसकी पूरी-पूरी सही स्थिति जान लेने के बाद हमें उसमें उतरने में कोई कठिनाई नहीं लगती। किसी भी विषय में अवगाहन करने का आनन्द ही हमें बार-बार उसकी ओर खींचता है। हमने देखा कि ब्रह्मतत्त्व अपने को अहंकार से कैसे पैदा करता है। उसके बाद आकाश आदि तत्त्वों की उत्पत्ति को हम वैज्ञानिक दृष्टि से समझें तो यह सारा संसार energy vibration के द्वारा निर्मित हुआ है। जितने भी पदार्थ बने हैं, उनका अवसान अन्ततोगत्वा जाकर कम्पन में ही होता है। कहते हैं कि परमाणु को तोड़ने से जितनी energy निकलती है, उतनी ऊर्जा आती कहाँ से है? उस ऊर्जा का स्वरूप भी vibration ही है। बहुत जोरों के vibration से यदि energy concentrated हो जाए, तो उसका reaction भी बहुत बड़ा होता है। वह ऊर्जा पहाड़ों, चट्टानों तक को काट देती है। यह सब भी vibration पर निर्भर करता है, जिसे कम्पन, स्पन्दन या तरङ्ग कहते हैं। आकाश में स्पन्दन उत्पादक जो तत्त्व उत्पन्न हुआ, वह कहलाया वायु। यह स्वाभाविक ही है कि कम्पन या स्पन्दन जब जोरों से होता है, तो उसमें से गर्मी निकलती है और उस तत्त्व को हम अग्नि के नाम से जानते हैं। जब गर्मी बहुत बढ़ जाती है, तो उसमें से जलतत्त्व का जन्म होता है। वही जलतत्त्व जब जमने लगता है, तो उसीको हम ठोस रूप में (बर्फ के रूप में) देखते हैं। उसी को पृथ्वी अंश पुकारा गया। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (७४)

स्वामी बोधानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

(१९७९ ई. में न्यूयार्क सोसायटी से मुझे स्वामी पवित्रानन्द जी की एक दैनन्दिनी मिली। उस दैनन्दिनी में अन्य बातों के साथ स्वामी बोधानन्द जी की स्मृति भी थी। उस दैनन्दिनी से मूल्यवान स्मृति का संग्रह करके मैंने उसका सम्पादन किया है।)

''मैंने **(स्वामी बोधानन्द १८७०-१९५०)** आलमबाजार मठ में स्वामीजी को ध्यान करते हुए देखा। वह ध्यान दो-तीन घण्टा तक चला, मानो शरीर-बोध ही नहीं है। गहरी और लयबद्ध साँसें चल रही हैं, जैसे गहरी निद्रा में किसी व्यक्ति की चलती है। देखने में ऐसा लगा कि चुटकी काटने पर भी उनको उसका अनुभव नहीं होगा। उनके चेहरे का भाव पूरी तरह से परिवर्तित हो गया था। हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज) को भी गम्भीर ध्यान में देखा हूँ। ध्यान के समय स्वामीजी और हरि महाराज दोनों के चेहरे का भाव एक-दूसरे से भिन्न था। स्वामीजी के मुख का भाव शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

(स्वामी बोधानन्द १८७०-१९५०)

''मैं सदैव यही देखता कि हरि महाराज जाग्रत अवस्था में रहते हैं। ऐसा लगता कि वे सब समय चेतना के उच्च स्तर पर रहते हों। मैं मठ के अन्य सदस्यों को बहुत जप-ध्यान करते देखा करता, किन्तु अन्य समय वे हास-परिहास भी करते थे। लेकिन हरि महाराज जैसे सब समय सजग और सचेतन अवस्था में रहते थे। वे आलमबाजार मठ में हमलोगों की भाषापरिच्छेद (न्यायशास्त्र) की कक्षा लेते थे।

''१८९० ई. के आस-पास मैं वराहनगर मठ में आवागमन करता था। उस समय खाने-पीने तथा पहनने का उतना कष्ट नहीं था, किन्तु सभी कुछ बहुत सादा तथा सामान्य था। सभी एक परिवार के सदस्य जैसे थे, एक ही कमरे में रहते थे। बनावटी अनुशासन या प्रशिक्षण कुछ नहीं था। अभी जैसा है, उस समय भी बहुत स्वाधीनता थी। किन्तु सभी आध्यात्मिक साधना में बहुत ही मग्न रहते थे। उनलोगों की देखा-देखी, हमलोग भी वैसा ही करने का प्रयत्न करते थे।

''काली महाराज (स्वामी अभेदानन्द जी) ने वसन्त नामक एक लड़के को मठ में लाया। वे उसको लघु-सिद्धान्त-कौमुदी तथा अन्य संस्कृत व्याकरण पढ़ाते थे। बहुत-से लोग इसको लेकर हास-परिहास करते। अन्य संन्यासीगण अधिक पुस्तक पढ़ना पसन्द नहीं करते थे। काली महाराज एक कमरे में अधिकांश समय जप-ध्यान और स्वाध्याय करते रहते थे। वे लोगों के साथ बहुत मिलते-जुलते नहीं थे। वे कुछ दिन मठ में रहते तथा पुनः चले जाते थे। उन्होंने भारत के प्रमुख तीर्थों का पैदल ही भ्रमण किया था।

''स्वामीजी की शिकागो वक्तृता के उपलक्ष्य में कोलकाता में जब विशेष सभा हुई, तब काली महाराज ने बहुत परिश्रम, असम्भव जैसा परिश्रम किया था। बाद में उन्होंने उन वक्तृताओं को प्रकाशित किया था।

''मैं पहले रामबाबू (रामचन्द्र दत्त) से प्रभावित हुआ था। वे अवतारवाद का प्रचार करते थे। वे अपना विचार व्यक्त करते थे कि श्रीरामकृष्ण अवतार हैं।

''वराहनगर मठ में अत्यधिक स्नेह-प्रेम मिला है। उसको शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। हरि महाराज अपने-आप में ही डूबे रहते थे, किन्तु मेरे साथ बहुत स्वतंत्र थे।

''आरम्भ से ही, हमलोगों के मन में चमत्कार के प्रति एक घृणा-जैसा हो गयी थी। स्वामीजी चमत्कार को लेकर बहुत हास-परिहास करते थे।

''हमलोगों के समय भी देखा कि अनेक व्यक्ति कहते थे कि कुण्डलिनी जागृत हुई है तथा उनको साक्षात्कार हुआ है, किन्तु उनलोगों के जीवन में उसके कुछ लक्षण दिखाई नहीं देते थे। स्वामीजी उन लोगों को लेकर बहुत हँसी-मजाक करते थे। वे प्राय: कहते थे, ''नित्यगोपाल को अनेक आध्यात्मिक अनुभव हुआ करते थे, किन्तु हमारे शरत् (स्वामी सारदानन्द) तथा अन्य गुरुभाई उससे अधिक आध्यात्मिक उन्नत हैं।''

पूर्णचन्द्र घोष

''राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) सदा ही ऐसे प्रतीत होते मानो कि वे अन्य लोक के व्यक्ति हैं। महाराज और हरि महाराज को देखने से ही अनुभव होता कि उनलोगों को कुछ प्राप्त हुआ है; वे लोग अपने स्वभावानुसार साधन-भजन कर रहे हैं। दूसरों को देखने से ऐसा लगता कि वे लोग नशा से मजबूर होकर गहन आध्यात्मिक साधना कर रहे हैं।

''नाग महाशय को देखने से ऐसा लगता कि वे ज्वलन्त अग्नि हैं – सर्वदा एक उच्च भाव में हैं, एक मुहूर्त के लिए भी उस भाव से च्युत नहीं होते थे। यदि ठाकुर के समय वे जन्म-ग्रहण नहीं करते, तो उनको लोग अवतार के रूप में मानते। किन्तु अभी उनको एक भक्त माना जाता है।

''स्वामीजी एक महान आध्यात्मिक व्यक्तित्व के रूप में प्रतीत होते। हालाँकि वे सामाजिक, शैक्षणिक तथा देश के अन्य समस्याओं के विषय में बातें किया करते थे, किन्तु वे सब जैसे एक ही रत्न के विभिन्न अंश हों। उनके भीतर एक अप्रतिम आध्यात्मिक भाव था और ये सब उसके ही विभिन्न अभिव्यक्ति थे। श्रोताओं की ओर से बेपरवाह, वे सभी समस्याओं को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही देखते थे।

''उन दिनों मठ में ध्यान-भजन के बाद सब लोग स्तोत्र-पाठ करते थे। कोई गीता, तो कोई छोटी-सी किसी उपनिषद् का स्वाध्याय करते थे। इसीलिए अधिकांश साधुगण संस्कृत श्लोक कण्ठस्थ बोल सकते थे।

''हरि महाराज बचपन से ही ब्रह्मचारी जैसे ही रहते थे। वे स्वपाक भोजन करते थे। यहाँ तक कि वे अपने मातृतुल्य भाभी जी के हाथ से बना भोजन भी ग्रहण करने में संकोच का अनुभव करते थे।

''यद्यपि पूर्ण बाबू (पूर्णचन्द्र घोष) गृहस्थ थे, तथापि उनको देखने से ऐसा लगता कि उनके भीतर कुछ विलक्षणता है। वे बहुत ही अन्तर्मुखी स्वभाव के थे। शिमला में उनके पास प्रबुद्ध-भारत अंग्रेजी मासिक पत्रिका आती थी। पत्रिका मिलते ही वे उसे एक बॉक्स के भीतर रख देते थे। रात्रि में सबके शयन करने के बाद द्वार बन्द करके उसे पढ़ते थे। शायद वे मन-ही-मन में सोचते होंगे, 'ठाकुर मेरी कितनी प्रशंसा करते थे और मैं एक गृहस्थ हो गया, यह लज्जा की बात है ! यह अच्छा होगा, जिससे लोग यह जान न पायें कि ठाकुर मेरे विषय में इतनी उँची बातें कहा करते थे।' हमलोगों के उनके पास जाने पर वे हमारा बहुत स्वागत करते थे। मैंने अनेक दिन उनके बागबाजार मकान में चाय पी है। उनका मकान जैसे चाय पीने का अड्डा हो। आस-पास के लोग प्राय: उनके मकान पर आते और चाय का आनन्द लेते थे। वे बहुत नम्र थे। जब वे मठ में आते, तो बहुत ही शान्त रहते थे। कभी-कभी बाबूराम महाराज के साथ ठाकुर के सम्बन्ध में बहुत समय तक वार्तालाप करते और घर वापस चले जाते थे। पूर्ण बाबू की कई पुत्रियाँ थीं तथा उनके विवाह में बहुत रुपया खर्च हुआ था।

''ठाकुर भवनाथ की बहुत प्रशंसा किया करते थे। भवनाथ का स्वभाव स्त्रियों जैसा था। मठ में कई लोग उनको लेकर हास-परिहास करते थे। आरम्भ में वे ब्रह्मसमाज से प्रभावित थे। जब वे आलमबाजार मठ में आते, तो मन्दिर में बैठकर ध्यान करते और उसके बाद ब्राह्मसमाज का संगीत गाते थे – जायेंगे बीत क्या दिन मेरे यों ही व्यर्थ में ।

बैठा नाथ नयन बिछाये आशा पथ में ।।...

वे भजन गाते-गाते रोने लगे। रोते-रोते गाने से भजन सुनने में उतना अच्छा नहीं लगता था। **(क्रमशः)**

पुस्तक समीक्षा

सूक्तसारिका

लेखक – डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रकाशक – डॉ. सत्येन्दु शर्मा
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

पृष्ठ – ९०, मूल्य – १००/-

सत्येन्दु शर्मा की वाणी को अपनी विलास-भूमि बनाने वाली सारिकास्वरूपिणी माँ भगवती शारदा के मुखारविंद से निःसृत सूक्तसारिका की रचना के पूर्व नौ रचनाओं के द्वारा नव दिशाधिष्ठित देवताओं की वागर्चा को सम्पादित कर आपने अन्तिम दिक्पाल अनन्त की अर्चना में यह वाक्सुमन सूक्तसारिका अर्पित की है, जो उनके कवियश को अनन्त में स्थापित करती है।

अनादि अनन्त सत्यसूक्त गंगोत्री से यह ज्ञानगंगा प्रवाहित होकर राष्ट्र की आन, बान, शान राष्ट्रध्वज की स्तुतिस्वरूप गंगा सागर में परिणति को प्राप्त होती है। यह मुक्त काव्य संस्कृत सूक्त, स्तोत्र-स्तुति संग्रह है। इस सूक्तसारिका में आपने २६ सूक्त और १९ स्तोत्र एवं स्तुति की रचना ३२१ पद्यों में की है। जन-सामान्य को भी इस ज्ञानयज्ञ के द्वारा उपकृत करने हेतु हिन्दी भाषानुवाद के साथ इसका प्रकाशन आपके लोकोपकार की भावना की परिपुष्टि करता है। आपकी दिव्य गीर्वाणवाणी से निर्गत २६ सूक्त योगशास्त्र द्वारा प्रतिपादित २६ तत्त्वों के समान प्रतीत होते हैं, जिनसे यह सृष्टि संपोषित है। इन सूक्तों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वैदिक काल में वैदिक ऋषियों ने मन्त्रों का साक्षात्कार करके गायत्री, अनुष्टुप, जगती, पंक्ति, वृहती, त्रिष्टुप आदि वैदिक छंदों का आश्रय लेकर सूक्तों की रचना द्वारा जिस ज्ञान, भक्ति और वैराग्य रूप अमृतवल्ली का बीजारोपण किया था, वर्तमान में सूक्तसारिका उन्हीं वैदिक छन्दों के साथ-साथ लौकिक छन्दों के आश्रय से उसी को पल्लवित, पुष्पित एवं सम्पोषित करने का गुरुतर कार्य कर रही है।

प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह पुस्तक लौकिक और अलौकिक, दिव्य ज्ञान की परिचायिका प्रतीत होती है। इसमें वर्णित सत्यसूक्त, सर्वात्मसूक्त, ब्रह्मसूक्त, मनःसूक्त, योगसूक्त, आत्मशुद्धिसूक्त आदि आध्यात्मिक ज्ञान की परिपुष्टि करते हैं। गणपतिसूक्त, शिवसूक्त, श्रीकृष्णसूक्त, कामाख्यासूक्त, सरस्वतीसूक्त, अग्निसूक्त, वायुसूक्त, भक्तिसूक्त, महादेवस्तवन, मृत्युञ्जयाष्टक, शिवाष्टमूर्तिस्तोत्र, महाकालपंचक, शिवचामरचर्या, शिवो मे शरण्यम्, श्रीसंकटमोचनस्तुति, काली स्तुति, नर्मदाष्टक आदि आधिदैविक महत्त्व की स्थापना करते हैं। मातृभूमिसूक्त, विधर्मिसूक्त, श्रमसूक्त, देहसूक्त, मदिरासूक्त, श्रीरामकृष्णस्तुति, विवेकानन्दस्तुति, कोरोनानाशकस्तुति, छत्तीसगढ़स्तुति, राष्ट्रध्वज स्तुति आदि आधिभौतिक महत्त्व की प्रतिष्ठा करते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से यह सूक्तसारिका भक्तिरस से तरंगित, प्रसाद गुण से गुम्फित, अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि अलंकारों से अलंकृत, देवादि विषयक रति के द्वारा भावध्वनि से अनुप्राणित, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शब्दशक्ति के द्वारा शक्ति सम्पोषित, अद्भुत, चित्र-विचित्र वर्णनों से चित्रित, धर्मानुकूल आचरणों से धार्मिक, विविध स्तवन और स्तुतियों से स्तुत्य, यन्त्रों के प्रशासन से प्रकाशित और ऋषि तुल्य उपदेशों से उपदिष्ट यह सूक्तसारिका सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक परिलक्षित होती है।

उपरोक्त गुणों से विभूषित यह पुस्तक सर्वजन हेतु पठनीय और संग्रणीय है। साथ ही विद्वत वरिण्यों में चिन्तनीय और विवेचनीय है तथा साधकों हेतु प्रातः पठनीय है।

समीक्षक – डॉ. राघवेन्द्र शर्मा, प्राध्यापक
साहित्य विभागाध्यक्ष, शास. दूधाधारी,
श्री.वै. संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर, (छ.ग)

पुस्तक समीक्षा

शाश्वत श्रुति-विज्ञान

लेखक – सुरेश शर्मा

प्रकाशक – वर्षा ओझा, कृते – श्रीरामकृष्ण सत्संग मण्डल, जोधपुर ९, आदर्श कालोनी, गली नं. ३, मानसागर, महामन्दिर, जोधपुर (राजस्थान)

पृष्ठ – ६४०, मूल्य – सप्रेम स्वाध्याय

भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने वचनामृत में अनेक स्थानों पर अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान को उस समय के नवीनतम आविष्कार यथा कैमेरा, गैस से जलने वाली बत्तियाँ आदि का समावेश कर बहुत सरलता से समझाया है। ग्रन्थ के अध्याय ४ पृ.सं. १४२ पर ठाकुर का उद्धरण दिया गया है, ''वे कहते हैं – 'विज्ञान' यानी विशेष रूप से जानना। किसी ने दूध के बारे में सुना भर है, किसी ने दूध देखा है और किसी ने दूध पीया है। जिसने केवल सुना ही है, वह अज्ञानी है, जिसने देखा है, वह ज्ञानी है, जिसने पीया है, उसे विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से ज्ञान हुआ है।'' श्रीसारदा-रामकृष्ण भावधारा से अनुप्राणित शाश्वत श्रुति-विज्ञान ग्रन्थ सनातन शास्त्रों में निहित विज्ञान की मौलिक शब्दावली के अर्थों की धारणा नवीनतम उदाहरणों के माध्यम से करवाने का सार्थक प्रयास है। इस प्रयास से सृष्टि-संहार क्रम से भगवत् तत्त्व एवं शक्ति, ऋतु, अप, काल, अहंकार, महत्, पंच-तन्मात्रा सम्पूर्ण देव-व्यवस्था, पंच महाभूत, यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र, सगुण साकार, सगुण निराकार, निर्गुण निराकार, कार्य-कारण व्यवस्था, सत्त्व-रजस्-तमस् क्रम-मात्रा भेद से छन्द आदि शब्दावली के अर्थों की गम्भीरतर विस्तारित धारणा के लिये बार-बार अलग-अलग स्तर की चर्चा की गई है। इस चर्चा में भाव का एक प्रवाह है, अनुभव की छाप, महापुरुषों के सत्संग का प्रसाद है, सनातन शास्त्रों के विज्ञान के प्रकाश से सनातन भारतीय गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा का संकल्प है। ठाकुर के भाव के अनुरूप यह ग्रन्थ यह प्रतिपादित करने में सफल होता प्रतीत होता है कि सनातन धर्म की प्रत्येक साधना पद्धति, प्रत्येक विद्या एवं प्रत्येक कला का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है और साधकों के भाव-भेद से उत्पन्न भिन्न-भिन्न प्रकट होनेवाले आध्यात्मिक अनुभव और ईश्वरीय रूप तत्त्वत: एक ही हैं।

ग्रन्थ में संस्कृत भाषा के व्याकरण नियमों को प्राकृतिक नियमों का ही अभिकथन प्रमाणित करते हुए माहेश्वर सूत्रों में दो हकार और ऋ-ऌ वर्णों की सावर्ण्यता का सृष्टि प्रक्रिया से सम्बन्ध की चर्चा, अनेक गम्भीर विद्वानों को भी आकृष्ट करेगी। साइंस को विज्ञान, तत्त्व को एलीमेन्ट, दर्शन को फिलोसॉफी, रिलीजन को धर्म का अनुवाद आदि अनेक गलत अनुवादों को मानने से अर्थ के अनर्थ के स्तर तक हुए पतन के प्रति गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता भी प्रतिपादित की गई है। सनातन धर्म को कपोल कल्पित बतानेवाले आधुनिक विज्ञान के जिज्ञासुओं को विज्ञान की सभी शाखाओं को मान्य एक ही परिभाषा देने सहित अनेक ठोस चुनौतियाँ प्रस्तुत की गई हैं, साथ ही अवतार तत्त्व की ठोस तार्किक चर्चा की गई है।

काल के भय से ग्रसित परीक्षित को सात दिवस में परमाचार्य परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेव जी महाराज ने कैसे परमगति प्रदान की, इसमें तकनीकी रूप से क्या और कैसे किया गया; की गंभीर चर्चा करते हुए श्रीमद्भागवत को समर्पित इस ग्रन्थ में पुराणों की कथाओं के माध्यम से भक्तों के चित्त में भगवत् भाव की धारणा के विज्ञान को प्रकट करने का सरस प्रयास किया गया है। प्रत्येक विषय को क्या-क्यों-कैसे की कसौटी पर परीक्षण करनेवाले आधुनिक विद्यार्थियों, विद्वानों के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

श्रीरामकृष्ण भक्त संघ, जोधपुर द्वारा नि:शुल्क प्रकाशित, ठाकुर भक्त श्री सुरेश शर्मा द्वारा रचित ९ अध्याय ५८१ शीर्षकों, दो परिशिष्ट, एक कठिन शब्दावली, चार रंगीन चित्रों सहित ६४० पृष्ठों वाला श्रीमाँ-श्रीठाकुर भावरसमय यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत् में सात दिवस में परीक्षित के काल के भय से मुक्त करने के परमाचार्य शुकदेवजी के विज्ञानमय शिक्षण एवं धारणा तकनीक पर प्रकाश डालनेवाला संवादात्मक सरस ग्रन्थ है। इसे उनकी वेबसाईट - https://sanatandharmvijnana.com से नि:शुल्क डाउनलोड कर पढ़ा जा सकता है।

रामकृष्ण मिशन की ११५वीं वार्षिक साधारण सभा

रामकृष्ण मिशन की ११५वीं वार्षिक साधारण सभा रविवार, १५ दिसम्बर २०२४ को सन्ध्या ३.३० बजे सम्पन्न हुई, जिसमें रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव द्वारा वित्तीय वर्ष २०२३-२४ में संस्था द्वारा किये गये कार्यों के विषय में रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

१. पुरस्कार एवं सम्मान – (क) (अ) रामकृष्ण मिशन को समाज-सेवा के क्षेत्र में मिशन के योगदान हेतु 'राज्यपाल उत्कृष्टता पुरस्कार' पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा प्रदान किया गया। **(ब)** अरुणाचल प्रदेश में मिशन द्वारा प्रदान की गई प्रशंसनीय सेवाओं के लिये अरुणाचल प्रदेश राज्य पुरस्कार प्राप्त हुआ। **(ख)** विवेकानन्द विश्वविद्यालय के छात्रों ने राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत छात्र प्रतिभा महोत्सव में १ स्वर्ण, १ रजत और १ कांस्य पदक प्राप्त किया **(ग)** विवेक नगर, अगरतला स्थित विद्यालय की केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा एक अनुकरणीय सीबीएसई विद्यालय के रूप में सराहना की एवं विद्यालयों के छात्रों ने भारत सरकार के नीति आयोग के द्वारा अघोषित राष्ट्रीय स्तर के बूट कैंप में छठवाँ स्थान प्राप्त किया।

२. नवीन केन्द्र – (क) रामकृष्ण मिशन के छह नवीन केन्द्र – हरियाणा के गुरुग्राम, पश्चिम बंगाल के कल्याणी, असम के खारूपेटिया, महाराष्ट्र के सकवार, तमिलनाडु के तिरुमुक्कुडल और मध्यप्रदेश के उज्जैन में प्रारम्भ किये गये। **(ख)** रामकृष्ण मठ की तीन नवीन शाखाएँ मध्य प्रदेश के अमरकण्टक, पश्चिम बंगाल के दक्षिणेश्वर एवं कर्नाटक के वेंकटपुरा में आरम्भ की गईं।

३. भारत में गतिविधियाँ – रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ ने अपने २३५ भारतीय शाखा-केन्द्रों और उप-केन्द्रों के माध्यम से विभिन्न सेवाओं पर १२९२.०३ करोड़ खर्च किये, जिनका विवरण निम्नलिखित है –

सेवा क्षेत्र	लाभार्थियों की संख्या रु. (लाखों में)	व्यय की गई राशि रु. (करोड़ में)
राहत एवं पुनर्वास	५.२३	८.५६
सामान्य कल्याण	५६.३४	२९.०७
चिकित्सा	७९.२८	४९६.७०
शिक्षा	२.८७	७१२.८९
ग्रामीण विकास	२.४०	१८.३१
साहित्य प्रकाशन		२६.५०

कुल – १,२९२.०३

४. भारत के बाहर विदेशों में गतिविधियाँ – रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण मठ ने ३४ देशों में स्थित अपने १०० केन्द्रों एवं उप-केन्द्रों के माध्यम से विभिन्न सेवा कार्य किये गये।

हम अपने सदस्यों, शुभचिन्तकों एवं भक्तों को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सेवा-कार्यों में प्रदत्त उनके अमूल्य समर्थन और सहयोग के लिए धन्यवाद देते हैं।

रामकृष्ण मठ
१५-१२-२०२४

स्वामी सुवीरानन्द
महासचिव
रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन